विषयानुसार सूची।

CLASSIFIED CONTENTS.

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी

हिन्दी-साहित्य-सङ्कलन

उदयपुर

उदयपुर शहर पीछोला तालाब के पूर्वी किनारे की उत्तर दक्षिण स्थित पहाड़ी के दोनों पार्श्व पर बसा हुआ है। इसके पूर्व तथा उत्तर में समान भूमि आगई है, जिधर नगर बढ़ता जाता है। नगर पुराने ढंग का घना हुआ है और एक बड़ी सड़क को छोड़ कर बहुधा सब रास्ते व गलियाँ तंग हैं। नगर के तीनों ओर पक्का परकोटा खिंचा हुआ है, जिसमें स्थान स्थान पर बुर्ज बने हुए हैं। नगर के उत्तर तथा पूर्व में, जहाँ परकोटा पर्वत माला से दूर है, एक चौड़ी खाई कोट के समीप में ही खुदी हुई है। शहर के दक्षिणी भाग में पहाड़ी की ऊँचाई पर पीछोले के किनारे पुराने राजमहल बड़े ही सुन्दर और प्राचीन-शैली के बने हुए हैं। पुराने महलों में मुख्य छोटी चित्रशाली, सूरज चौपाड़, प्रीतम नियास, मानिक महल, मोती महल, चीनी की चित्रशाली, दिल खुशाल और बाड़ी महल (अमर विलास) मुख्य हैं। पुराने महलों के आगे अंग्रेज़ी ढंग का शंभुनिवास नाम का एक नया महल है, और उसके निकट वर्त्तमान महाराणा साहब का बनवाया हुआ शिवनिवास नामक सुविशाल महल लाखों रुपये की लागत से तैयार हुआ है। राजमहल

शहर के सब से ऊँचे स्थान पर बनाये जाने के कारण और इन के नीचे ही विस्तीर्ण सरोवर होने से उनकी प्राकृतिक शोभा बहुत बढ़ी-चढ़ी है। राजमहलों के नीचे सज्जन निवास नाम का बड़ा ही रमणीय और विस्तृत बाग़ आगया है, जिसमें जगह जगह फव्वारे छूटते हैं। इस बाग़ में एक तरफ़ शेर, नाहर, चीते आदि जानवरों; और रोझ, हिरण, ज़ेबरा, रीछ आदि जानवरों एवं तरह तरह के पक्षियों के रहने के स्थान निर्माण किये गये हैं। एक तरफ़ विक्टोरिया-हाल नामक विशाल भवन बना हुआ है, जिसके सामने महारानी विक्टोरिया की पूरे क़द की मूर्त्ति खड़ी है, और भवन में पुस्तकालय, वाचनालय, अजायबघर आदि बने हैं। पुस्तकालय में ऐतिहासिक पुस्तकों का बड़ा संग्रह है और अजायबघर में पुराने शिला-लेख तथा प्राचीन मूर्त्तियाँ भी यथेष्ट संख्या में हैं। शहर में देखने योग्य स्थान जगदीश का मन्दिर भी है। महाराणा जगत्सिंह प्रथम ने वि०सं० १७०८ में लाखों रुपये व्यय कर इस देवालय का निर्माण किया था। यह विशाल और सुन्दर शिखरबन्द मन्दिर एक ऊँचे स्थान पर बना हुआ होने के कारण बड़ा ही भव्य दीखता है। इस मन्दिर के बाहरी भाग में चारों ओर अत्यन्त सुन्दर खुदाई का काम है, जिस में गजथर, अश्वथर तथा संसारथर भी प्रदर्शित किये गये हैं। गजथर के कई हाथी और बाहरी द्वार के पास का कुछ भाग औरंगज़ेब की चढ़ाई के समय मुसलमानों ने तोड़ डाला था, जो नया बनाया गया है। इस में खंडित हाथियों की पंक्तियों के अतिरिक्त नये हाथी भी यथा स्थान लगा दिये हैं। उदयपुर में शिव, विष्णु, देवी आदि के तथा जैनों के कई मंदिर हैं, परन्तु ऐसा भव्य कोई भी नहीं है।

जगदीश का मन्दिर—उदयपुर

नगर के पश्चिमी किनारे पर पीछोला नामक विस्तीर्ण सरोवर है, जिसमें कई छोटे-बड़े टापू हैं और उन पर भिन्न-भिन्न समय के कई सुन्दर स्थान बने हुए हैं, जिनमें से दो विशेष उल्लेखनीय हैं। राजमहलों के सामने और नगर के समीप जग-निवास नामक महल हैं, जिनको महाराणा जगत्सिंह द्वितीय ने एक टापू पर बनवाया था। इन में बगीचे, हौज़ और फव्वारे इत्यादि कई वस्तुएँ दर्शनीय हैं। प्राचीन महलों में संगमरमर का बना हुआ 'धौला-महल' देखने योग्य है। इसके सामने ही नहर का हौज़ बना हुआ है, जिसके चारों तरफ़ भूलभुलैयों के रूप में बनी हुई नालियाँ, पुष्पों की क्यारियाँ एवं ताड़ के ऊँचे ऊँचे वृक्ष लगे हुए हैं, जिनसे यहाँ पर हरियाली की एक अच्छी छटा सदैव बनी रहती है। महाराणा शंभुसिंह तथा सज्जन-सिंह ने अपने नाम से शंभुप्रकाश और सज्जननिवास नामक महल बनवाये। सज्जन निवास महल में तैरने के लिए एक विशाल कुण्ड तथा फव्वारों की पंक्तियाँ हैं और कुण्ड के दोनों तरफ़ बने हुए दालानों में बड़े-बड़े दर्पण लगे हुए हैं। इसकी दूसरी मंज़िल में सिंहादि हिंसक जन्तुओं के आखेट सम्बन्धी चित्र हैं और चौक के एक दूसरे भाग में हाथियों से अन्य पशुओं के युद्ध के दृश्य अनेक रंगीन चित्रों द्वारा अङ्कित किये गये हैं, जिनसे दर्शक का बड़ा मनोरञ्जन होता है। आजकल महाराजकुमार साहब सज्जनसिंह की ऊपरी मंज़िल के पास एक नया महल बनवा रहे हैं जिससे जगनिवास के इस भाग की शोभा और भी बढ़ जायगी। ये महल जल के मध्य में बने हुए होने के कारण उष्ण-काल में, यहाँ बड़ी ठण्डक रहती है। इस महल की दूसरी मंज़िल से सरोवर, राजमहल एवं नगर का दृश्य ऐसा रमणीक दिखाई पड़ता है कि सैकड़ों कोस दूर से

उदयपुर तक आने के सारे श्रम को यात्री क्षणमात्र में भूल जाता है और उसके हृदय में नैसर्गिक आनन्द की लहर उमड़ उठती है।

जग-निवास से अनुमानतः आध मील दक्षिण में एक दूसरे विशाल टापू पर जगमन्दिर नामक पुराने महल बने हुए हैं। महाराणा कर्णसिंह ने इनको बनवाना आरम्भ किया था, परन्तु *उनका काम अधूरा ही रहा, जिसको उनके पुत्र महाराणा जगत्-*सिंह प्रथम ने समाप्त किया। इसी से यह महल *जग-मन्दिर* कहलाते हैं। जगमन्दिर के बाहर तालाब के किनारे पर पत्थर के हाथियों की एक पंक्ति बनी हुई है। जगनिवास की अपेक्षा जगमन्दिर प्राचीन है और इसमें इतिहास-प्रेमी के लिए दर्शनीय स्थान भी अधिक हैं। इस महल में केवल प्राचीनता ही है। आजकल की तरह यहाँ भाँति-भाँति की सजावट दृष्टिगोचर नहीं होती। *जगमन्दिर में मुख्य स्थान एक गुम्बजदार महल* है। इसे गोल महल कहते हैं। इसके विषय में यहाँ के लोगों का कथन है कि शाहज़ादा ख़ुर्रम अपने पिता जहाँगीर से विद्रोह करने पर उदयपुर आकर कुछ समय तक रहा था, उस समय उसने उक्त महल बनवाया था। इस महल को देखने से ज्ञात होता है कि इसका निर्माण करने में आगरे के कारीगरों का हाथ अवश्य था, क्योंकि इसके गुंबज आदि में पत्थर की पच्ची-कारी का जो काम है, यह *मेवाड़ की शैली का नहीं, किन्तु* आगरे के सुप्रसिद्ध ताजमहल के *ढंग का है।* आश्चर्य नहीं कि इसी महल के गुंबज की शैली पर ताजमहल का गुंबज भी बना हो, क्योंकि यह ताजमहल से पहिले का बना हुआ है। इस महल के सामने एक विशाल चौक है, जिसके मध्य में एक

बड़ा हौज़ बना हुआ है। इस हौज़ के चारों किनारों पर एवं चौक के मध्य में फव्वारों की पंक्तियाँ बनी हुई हैं। ये ताज-महल के सामने के फव्वारों का स्मरण दिलाती हैं, परन्तु अब यह बिगड़ी हुई दशा में हैं, इसीलिए जलधाराओं के छूटने का आनन्द दर्शक को प्राप्त नहीं होता। इनके अतिरिक्त कई एक दालान और छोटे-बड़े अन्य स्थान भी हैं, जो पीछे से महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय के समय में बने थे। जगमन्दिर में बहुत बड़ा बग़ीचा लगजाने से इसकी बहुत कुछ शोभा-वृद्धि हुई है। गोलमहल के पूर्व पार्श्व में संगमरमर की केवल बारह बड़ी-बड़ी शिलाओं से बना हुआ एक महल है। ई० सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह के समय नीमच के कई एक अङ्गरेज़-कुटुम्बों को, महाराणा स्वरूपसिंह ने, अपने यहाँ लाकर, सत्कारपूर्वक, इन्हीं महलों में रक्खा था।

पीछोले के 'बड़ीपाल' नामक बाँध के दक्षिणी किनारे से प्रारम्भ होकर तालाब के दक्षिणी तट के पास-पास पहाड़ियों की एक शृंखला चली गई है। बांध के समीप की ऊँची पहाड़ी 'माछला-मगरा' (मत्स्य-शैल) कहलाती है। और उस पर एक लिंगगढ़ नामक प्राचीन दुर्ग बना हुआ है, जहाँ कुछ तोपें भी रहती हैं। उदयपुर पर मरहटों के आक्रमण के समय इस दुर्ग ने नगर की रक्षा करने में बहुत-कुछ सहायता की थी। दक्षिण में अर्वली पर्वत-माला की इन श्यामवर्ण पहाड़ियों की पंक्ति आजाने से तालाब की शोभा और भी बढ़ गई है। इधर दक्षिणी तट पर 'खास ओदी' नामक स्थान है जहाँ सिंह-शूकर युद्ध के लिए चौकोर मकान बना हुआ है। इस मकान की छत पर बैठ कर यह युद्ध देखने में बड़ा ही आनन्द आता है। खास

ओदी से कुछ दूर पश्चिम में सरोवर के दक्षिणी सिरे के निकट सीसारमा गाँव है। यहाँ पर वैद्य नामक शिवालय देखने योग्य है। इस शिवालय को महाराणा संग्रामसिंह द्वितीय की माता देवकुमारी ने बनवाया था। अपनी मातृभक्ति के कारण महाराणा संग्रामसिंह ने लाखों रुपये व्यय करके, इस देवालय की प्रतिष्ठा वि० सं० १७५२ माघ सुदी १२ को बड़ी धूमधाम से की थी। इसके उत्सव में कोटे के महाराज भीमसिंह, डूंगरपुर के रावल रामसिंह तथा कई प्रसिद्ध राजवंशी विद्यमान थे, और राजमाता ने सुवर्ण का तुलादान किया था। मन्दिर में दो बड़ी-बड़ी शिलाओं पर खुदी हुई वि० सं० १७७५ की प्रशस्ति लगी है। इसमें उक्त उत्सव का विस्तृत वर्णन है। यह प्रशस्ति इतिहास एवं इतिहास प्रेमियों के लिए बड़े महत्व की है।

नगर के हाथीपोल दरवाजे के बाहर ही थोड़ी दूर पर रेज़िडेन्सी का भवन बना हुआ है। यहाँ से पश्चिम की ओर जाने पर फतहसागर के बाँध के नीचे ही 'सहेलियों की बाड़ी' नामक बाग़ आता है। यहाँ भी मामूली ढंग का एक महल बना हुआ है। इसके आगे एक चौक है, जिसमें एक बहुत बड़ा हौज़ है। इस बाड़ी में महलों की अपेक्षा फ़व्वारों का दृश्य बड़ा ही चित्ताकर्षक है। हौज़ के चारों तरफ़ फ़व्वारों की पंक्तियाँ लगी हुई हैं, जिनसे सैकड़ों धाराओं के एक साथ छूटने पर दर्शक को ऐसा मालूम होता है कि मानों एक जल-भित्ति खड़ी हो गई हो। हौज़ के चारों किनारों पर बनी हुई छत्रियों के गुम्बजों आदि विविध भागों तथा उनके ऊपर बने हुए भाँति-भाँति के पक्षियों की चोंचों से ऊँची धाराएँ चारों ओर छूटती हैं। हौज़ के बीच की छत्री के गुम्बजों में से चारों तरफ़

जल इस प्रकार गिरता है, जैसे एक प्रपात फूट निकला हो। इस बाग में फूलों से लदी हुई क्यारियों और हरी-हरी दूब की अद्भुत छटा के साथ-साथ स्थान-स्थान पर छोटे-बड़े फव्वारों की ऐसी विचित्र रचना की गई है कि उनके सौन्दर्य का ठीक अनुमान देखने से ही हो सकता है। यहाँ एक विशाल अण्डाकृति कुण्ड है, जिसमें कमल-वन लगा हुआ है। कुण्ड के चारों तरफ़ चार-चार इञ्च के अन्तर पर फव्वारों के छिद्र बने हैं तथा मध्य में एक विशाल फव्वारा लगा हुआ है। उस कुण्ड के आमने-सामने पत्थर के बने हुए चार हाथी हैं। कमल-वन के मध्य का विशाल फव्वारा जब चलने लगता है तब हाथियों की सूंडों से मोटी-मोटी धारायें बहुत दूर तक छूटती हैं और सहस्रों धाराओं के एक साथ निकलने पर दर्शक को यह अद्भुत दृश्य ऐसा प्रतीत होता है, मानों वर्षारम्भ हो गया हो। फव्वारों के बड़े वेग से छूटने का कारण यह है कि इनमें जल बड़ी ऊँचाई पर स्थित फतहसागर से नलों द्वारा पहुँचाया जाता है। राजपूताने में फव्वारों की सुन्दर छटा के लिए भरतपुर राज्य का डीग नामक स्थान प्रसिद्ध है, परन्तु जिन्होंने डीग के फव्वारे छूटते हुए देखे हैं, वे भी इस फव्वारों की मनमोहक छटा के आगे डीग के फव्वारों की शोभा को कहीं फीकी बतलाते हैं। फव्वारों की यह अद्भुत रचना वर्तमान महाराणा साहब की इच्छा के अनुसार की गई है। श्रावण मास की हरियाली में, अमावस्या के अवसर पर, इस बाड़ी में नगर निवासियों का एक बड़ा मेला लगता है। उदयपुर में यह बाड़ी भी मन-बहलाव के लिए एक उपयुक्त स्थान है।

प्रश्न

(१) उदयपुर का सौन्दर्य किन-किन बातों पर निर्भर है?

(१) पीछोला, सहेलियों की बाड़ी, जगदीश जी का मन्दिर, जगमन्दिर, सज्जननिवास, जगनिवास तथा वैद्य नामक शिवालय का संक्षिप्त वर्णन करो।

एक झलक

(उदयपुर। प्रताप का प्रासाद। प्रभात। विचार मग्न प्रतापसिंह। सहसा सामन्त का प्रवेश।)

सामन्त—राणा!

प्रताप—(चौंककर) कौन? सामन्त जी! कहिए, क्या सम्वाद है?

सामन्त—क्या कहूँ? बस अब नहीं देखा जाता। जी चाहता है, जन्म-जन्मान्तर के लिए आँखें मूँद लूँ।

प्रताप—क्यों-क्यों; क्या कोई विशेष घटना……

सामन्त—नहीं राणा, यही नित्य की दुर्दशा प्रतिदिन नई मालूम होती है। काँटे की तरह इसकी कसक पल-पल पर अपरिचित-सी, नवीन-सी जान पड़ती है।

प्रताप—राजमहल का कोई विशेष सम्वाद है?

सामन्त—राजमहल? उसे राजमहल न कहो राणा, उसके वक्षःस्थल पर वासनाओं का यह अविराम ताण्डव देख कर भी क्या उसे पिशाचपुरी न कहना चाहिए? देखते नहीं हो राणा, आज बाप्पा रावल का यह उज्ज्वल राज-मुकुट कायरता के कलंक से काला हो रहा है, मखमली म्यान में भुवन-विजयी

वीरों की करारी-कटारी पर जंग चढ़ रहा है। क्या यह सब चुपचाप सह लेने की बातें हैं? देव! उस दिन का अमर इतिहास क्या सहज ही भुलाया जा सकता है, जब......(कण्ठावरोध)

प्रताप—हाँ-हाँ कहो भाई, जब... ..

सामन्त—जब स्वाधीनता की आराध्यदेवी, स्वच्छन्द वायु के झकोरों से, स्वर्ण उषा के अधरों से, मुक्त मेघ की बूँदों से, तेजस्वी सूर्यचन्द्र की स्वतन्त्र किरणों से, इसी मरुभूमि पर उतर कर क्रीड़ा किया करती थी; इसी अभागे मेवाड़ की उन्नत रक्त-ध्वजा उसके पावन चरणों के एक-एक चुम्बन पर प्रफुल्ल होकर चित्तौड़ दुर्ग के सर्वोच्च शिखर पर बड़े वेग से फहरा उठती थी। तब मेवाड़ को 'अपना' कहते समय हमारे वीर पूर्वजों की छाती फूल जाती थी, मस्तक ऊँचा हो जाता था और आरक्त आँखों के कोनों से सन्तोष और स्वाभिमान की किरणें फूट निकलती थीं। किंतु अब......

प्रताप—अब भी मेवाड़ को 'माँ' कहते समय किसे रोमाञ्च न होगा? क्या कहते हो भाई, हम माँ को भूल गये? सम्भव है। पर माँ तो हमें नहीं भूली! कल जिसे 'अपनी' कहने में गर्व होता था, उसी को आज कोई केवल इसलिए 'पराई' कैसे कहेगा कि उसे 'अपनी' कहने में लाज लगती है? क्षुब्ध न हो सामंत जी! शक्ति और साधन तो देशभक्ति का शरीर-मात्र है। उसकी अन्तरात्मा तो हृदय का वह उज्ज्वल भाव है, जो हममें उसके लिए पतंगे की तरह मर मिटने का साहस भर देता है।

सामन्त—फिर भी, जिनके कंधों पर आज चित्तौड़ के उद्धार का भार है, लाखों प्रजा-जनों की उत्सुक आँखें जिनकी विशाल भुजाओं से आशा रखती हैं, उन्हीं को इस प्रकार विलासिता और बुज़दिली का जीवन बिताने का क्या अधिकार है? मेवाड़ का राज-मुकुट इस प्रकार कायरों के मस्तक का भूषण बन कर कब तक अपनी हँसी कराता रहेगा?

प्रताप—यह प्रजा का प्रश्न है—जनता का अधिकार है। स्वदेश के सच्चे सैनिक, अधिकारों के लोभ से, सर्वस्व बलिदान नहीं करते। हमारे हृदय में लगन और त्याग की भावना तो हो, सारा संसार क्षण भर में हमारा सहायक बन जायगा।

(नेपथ्य में "हर हर महादेव", "मेवाड़-पति की जय", "महाराणा प्रताप की जय"—की ध्वनि)

प्रताप—(चौंककर) इस कुसमय में विजय-नाद कैसा? मेवाड़ के अकिंचन सेवक को किसने कहा, 'महाराणा!' किसकी जय और किसकी विजय? जननी जन्मभूमि चित्तौड़ के उद्धार के पहले यह जय-नाद उपहास-सा प्रतीत होता है!

(चन्द्रावत का एक हाथ में मुकुट और दूसरे में तलवार लिये हुए प्रवेश)

प्रताप—(खड़ा होकर) कौन? चंद्रावत कृष्ण जी! आप मेवाड़ के छोटे से सैनिक को 'महाराणा' कह कर क्या विनोद करने आये हैं?

चंद्रावत—महाराणा, यह विनोद नहीं, सत्य है—सूर्योदय की तरह सुंदर और स्पष्ट। आज चित्तौड़ का भाग जागा है। उदयपुर में उत्सुक वीर आपको बधाई देने आ रहे हैं।

(राजपूतों का प्रवेश)

राज० महाराणा की जय हो

(प्रताप किंचित संकुचित होते हैं, फिर उनका स्वागत करते हैं)

सामन्त—(सबको यथा स्थान बिठला कर) सम्भवतः किसी आकस्मिक घटना के आघात से राणा का गृह पवित्र करने को मेवाड़ी वीरों की यह मन्दाकिनी आज इधर से बह निकली है। क्यों न चन्द्रावत जी ?

चन्द्रावत—(खड़ा होकर) वीरो, तुम साक्षी हो। आज मैं प्रजा के प्रतिनिधि की हैसियत से वीरवर बाप्पा रावल का यह उज्ज्वल राज मुकुट—राजपुत्र प्रताप को नहीं—स्वदेश के सच्चे सैनिक को सौंपता हूँ। इसलिए नहीं कि इसे पहन कर राजा प्रजा पर अत्याचार करे, इसलिए नहीं कि इसे पहन कर प्रताप चित्तौड़ को भूल जायँ, इसलिए नहीं कि इसे पहन कर सेवक प्रभु बन जायँ। मैं इसे सैनिक प्रताप को देता हूँ—वीर प्रताप को देता हूँ—धनी प्रताप को देता हूँ। केवल तेज पर मुग्ध हो कर, त्याग को सर झुका कर, न्याय का भक्त बन कर, मातृभूमि पर मर मिटने की आपकी अमर अभिलाषा से चित्तौड़ के उद्धार की आशा रख कर। यह प्रजा का निर्णय 'नहीं' सुनना नहीं जानता! देव यह जनता की धरोहर—प्रजा की भेंट स्वीकार कीजिए!

(राजपूत जय-नाद करते हैं। प्रताप घुटने टेक देते हैं)

प्रताप—आपके आग्रह के आगे सर झुकाना मेरा धर्म है। मैं खूब जानता हूँ, चंद्रावत जी, यह काँटों का ताज है, इसीं

शिखर है। यह मुकुट नहीं कर्त्तव्य का स्मरण दिलाने वाला चिह्न है। यह जितना उज्ज्वल है, उतना ही कटु है। यह प्रभुता का चिह्न नहीं, सेवा का निशान है; राजकुमारों के विलास का साधन नहीं, वीरों को बलिदान के लिए अग्रसर करने वाला है। मैं इस विष के प्याले को अपने प्रभु की—प्रजा की आज्ञा से अमृत की तरह पीने को तैयार हूँ।

(चन्द्रावत सर पर मुकुट रखते हैं, हाथ में तलवार देते हैं। राजपूत जय-नाद करते हैं)

प्रताप—(तलवार खींच कर) भवानी, तू साक्षी है। जनता-जनार्दन ने आज मुझे अपना सेवक चुना है। मैं आज तुझे छूकर प्रतिज्ञा करता हूँ, कि जन्म भर मातृभूमि मेवाड़ के हित में, तन, मन, धन, सर्वस्व अर्पण करने से मुँह न मोड़ूँगा। सागर मर्यादा, हिमालय गौरव, सूर्य तेज और वायु वेग भले ही छोड़ दे, यह प्रताप प्राण छोड़ कर भी प्रण न छोड़ेगा भाइयो, जब तक चित्तौड़ का उद्धार न कर लूँगा, सत्य कहता हूँ, कुटी में रहूँगा, पत्तल में खाऊँगा और तृणों पर सोऊँगा। आज ही से—नहीं, इसी क्षण से—मेरे लिए ये राज-प्रासाद, ये स्वर्ण-शृंगार और यह आनन्द-विहार तृण से भी तुच्छ हैं माँ का स्वर्ण-संसार आज श्मशान हो रहा है—प्यारे चित्तौड़ में एक भी दीपक नहीं—उसका सम्मान आज यवनों की पद रज बन रहा है। क्या अब भी हम सुख की नींद सो सकते हैं!

(जन-समूहों से खड्गों की झंकार और 'नहीं-नहीं' की ध्वनि)

प्रताप—चित्तौड़ के सपूतो, मेवाड़ के वीरो, आज, यदि तुम्हारे उष्ण रक्त में कुछ भी उबाल आता है, तो मेरी प्रतिज्ञा में सहायक बनो।

राजपूत—आपके इंगित पर हम हँसते-हँसते मर मिटेंगे ।

चंद्रावत—मेवाड़ के सूर्य, बरसों से जो अभिलाषा इस हृदय में छिपी पड़ी थी, वह आज पूरी हुई । चित्तौड़ की दशा पर तो रोते-रोते आँखें अंधी हो चली थीं, हृदय फटा जाता था । कोई ऐसा नायक नज़र न आता था, जिसके इंगित पर मेवाड़ी वीर हँसते-हँसते चित्तौड़ की बलि-वेदी पर अपने प्राण होम देते । राणा, तुम्हें पाकर आज हम धन्य हैं, मेवाड़ धन्य है और धन्य है सीसोदिया वंश !

प्रताप—वीरो ! मेवाड़ के अभिमान ! चित्तौड़ की आशा ! आज तुम्हें पाकर हृदय उत्साह से भर गया है । चित्तौड़ के खँडहरों का शून्य हृदय हमारी अकर्मण्यता पर हाहाकार कर रहा है । एक बार उसे फिर स्वाधीनता-संग्राम के लाल दिन दिखाने को जी चाहता है । चलो हम संसार को दिखादें कि पद-दलित देशों के शेष शूर किस तरह अत्याचारियों की जड़ हिला देते हैं । आज से मेवाड़ का प्रत्येक पर्वत हमारा दुर्ग, प्रत्येक वन हमारा युद्ध-क्षेत्र और प्रत्येक गुफा हमारा राज-महल होगी । चित्तौड़ का उद्धार हमारा लक्ष्य और बलिदान हमारा मार्ग होगा । हर हर महादेव ।* (प्रस्थान)

पठ-परिवर्त्तन

प्रश्न

(१) सामन्त और प्रताप और चन्द्रावत और प्रताप में क्या बातें हुईं ?

(२) प्रताप ने क्या प्रतिज्ञा की और इसका सैनिकों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

---

* अप्रकाशित 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नाटक का एक दृश्य ।

सम्राट् अशोक का इतिहास में स्थान
आलोचनात्मक दृष्टि से

प्रसिद्ध ऐतिहासिक श्रीयुत एच० जी० वेल्स से एक बार पूछा गया कि संसार के इतिहास में सब से बड़े छः महापुरुष कौनसे हुए हैं, तो उन्होंने उत्तर दिया—ईसा, बुद्ध, अशोक, अरिस्टाटल, बेकन और लिंकन। बड़े-बड़े विजेताओं और सम्राटों जैसे सीज़र, सिकन्दर, पाम्पे, चार्ल्स आदि का नाम न लेकर, उन्होंने केवल अशोक का ही नाम लिया। सम्राटों में केवल अशोक को इस योग्य समझा गया कि वह संसार के सब से बड़े छः महापुरुषों में स्थान प्राप्त करने योग्य है। वे कौनसे कारण हैं, जिनसे सम्राट अशोक को इतनी महत्ता प्राप्त है? अशोक बहुत बड़ा विजेता नहीं हुआ। साम्राज्य की दृष्टि से प्राचीन और अर्वाचीन सम्राट उससे बड़े प्रदेशों पर शासन कर चुके हैं। फिर कौनसी बात है, जिसके कारण अशोक को इतना महत्त्व दिया जाता है? अशोक की महत्ता को समझने के लिए यह देखना आवश्यक है कि उसके कार्यों का इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा, और उसके शासन के क्या मूल सूत्र थे, जिनको सम्मुख रख कर उसने अपना कार्य किया?

पहले राजनैतिक दृष्टि से विचार कीजिए। अशोक एक बड़े साम्राज्य का स्वामी था। तत्कालीन संसार की सब से प्रबल सैनिक-शक्ति उसके आधीन थी। मगध की जिन प्रबल सेनाओं का नाम सुन कर ही सिकन्दर की विश्व-विजयिनी सेनायें घबरा गई थीं, जिन्होंने सैल्युकस जैसे विजेता को न केवल पराजित

ही किया था अपितु अपने राज्य के एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रदेश को देने के लिए बाधित भी किया था और जिसकी सहायता से सम्पूर्ण भारत में एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना हुई थी, वे सब अदम्य सेनायें अशोक के हाथों में ही थीं। उनकी सहायता से वह सम्पूर्ण संसार को विजय कर सकता था। सीरिया, मेसीडोन और इजिप्ट के राज्य उनके सम्मुख क्या चीज़ थे? वह सिकन्दर और सीज़र की तरह सम्पूर्ण जगत् पर अपना एकाधिपत्य स्थापित करने का यत्न कर सकता था। पर उसने ऐसा नहीं किया, क्योंकि कलिङ्ग-विजय के बाद ही उसने अनुभव कर लिया कि शस्त्रों के द्वारा जो विजय की जाती है वह असली विजय नहीं है; अपितु धर्म-विजय ही वास्तविक और मुख्यतम् विजय है। कितना उत्तम और आदर्श अनुभव है! यदि अन्य सम्राटों और विजेताओं ने भी यह अनुभव कर लिया होता, तो आज इतिहास के लाखों और करोड़ों पृष्ठ व्यर्थ और हानिकारक युद्धों से काले हुए न दिखाई देते। न केवल प्राचीन और मध्यकालीन राजाओं के लिए, परन्तु आज के सभ्य संसार के लिए भी सम्राट् अशोक का यह अनुभव सदा स्मरण रखने योग्य है। अशोक ने शस्त्र-विजय का इरादा छोड़ कर धर्म-विजय के लिए प्रयत्न करना आरम्भ किया और इसमें उसे पूर्ण सफलता भी प्राप्त हुई। इसीलिए वह उचित अभिमान के साथ लिखता है:—

"यह धर्म-विजय देवताओं के प्रिय ने यहाँ (अपने राज्य में) तथा छः सौ योजन दूर पड़ौसी राज्यों में प्राप्त की है, जहाँ अन्तियोक नामक यवन राजा राज्य करता है। उस अन्ति-योक के बाद तुरमय, अन्तिकिनी, मक और अलिक सुन्दर नाम

के चार राजा राज्य करते हैं और उन्हीं ने अपने राज्य के नीचे (दक्षिण में) चोल, पाण्ड्य तथा ताम्रपर्णी में भी धर्म-विजय प्राप्त की है।''' '''''सब जगह लोग देवताओं के प्रिय धर्मानुशासन का अनुसरण करते हैं और अनुसरण करेंगे। जहाँ देवताओं के प्रिय का धर्माचरण, धर्म-विधान और धर्मानुशासन सुन कर धर्मानुसार आचरण करते हैं और भविष्य में आचरण करेंगे। इस प्रकार सर्वत्र जो विजय हुई है वह विजय वास्तव में सर्वत्र आनन्द देने वाली है।"

अशोक ने इस धर्म-विजय के लिए किन साधनों का प्रयोग किया, इस विषय में हमें विशेष जानकारी तो नहीं है, परन्तु फिर भी अशोक के शिलालेख इस सम्बन्ध में हमारी यथेष्ट सहायता करते हैं। अशोक ने अपनी धर्म-विजय के लिए धर्म-महामात्र नाम के विविध राज-कर्मचारियों को नियत किया। वे कर्मचारी सर्वत्र देवताओं के प्रिय अशोक के सन्देश को सुनाते थे और लोगों को वास्तविक धर्म का अनुयायी बनाने का यत्न करते थे। इनका कार्य, 'हित और सुख करना' बाधा को दूर करना, अनाथों और वृद्धों की रक्षा करना तथा कैद और प्राण-दण्ड को नियन्त्रित करना होता था। ये सर्वत्र पर-हित और पर सुख के उद्देश्य को लिये हुए भ्रमण करते थे और लोगों पर विजय प्राप्त करते थे। इतना ही नहीं, अशोक ने न केवल अपने राज्य में किन्तु विदेशों में भी मनुष्य और पशुओं की चिकित्सा के लिए प्रबन्ध किया। जहाँ ओषधियाँ नहीं थीं वहाँ-वहाँ औषधियाँ उगवाईं, मार्गों में पशुओं और मनुष्यों के आराम के लिए वृक्ष लगवाये और कुएँ खुदवाये। अशोक के इन प्रयत्नों का क्या परिणाम हुआ होगा, इसका अनुमान सहज

में ही किया जा सकता है। अशोक के समय में प्रायः अन्य सभी राज्यों में विदेशी विजेता ही राज्य करते थे। वे अपनी शक्ति के मद में चूर थे। जनता की भलाई इनके ध्यान में कभी न आती थी। परन्तु अशोक के प्रयत्न से अवस्था में एक युगान्तर पैदा हो गया था। लोग इस बात को समझने लगे थे कि जनता के लिए वही सच्चा राजा है जो उसके हिताहित, सुख-दुख का सदैव ध्यान रक्खे। उसकी सुविधा के लिए कूप खुदवाये, वृक्ष लगवाये, धर्मशाला बनवाये और औषधालय खुलवाये। अशोक ने ये कार्य किये। जनता ने उसी को अपना राजा समझा। कितनी विचित्र बात है! खून की एक भी बूँद गिराये बिना केवल प्रेम और परोपकार के द्वारा अशोक ने अपूर्व धर्म-विजय प्राप्त की थी! वह न केवल भारतीय जनता को, परन्तु सम्पूर्ण मनुष्य जाति को—नहीं प्राणि-मात्र को अपना पुत्र समझता था। और सब का एक समान पालन करने का यत्न करता था। अनेक बार अशोक ने अपने शिला लेखों में इसी भाव का प्रदर्शन भी किया है।

साम्राज्य-लिप्सा और शक्ति प्रदर्शन के लिए इतिहास में कितने युद्ध किये गये। कितना रक्तपात हुआ पर क्या अशोक के सिवाय संसार के सम्पूर्ण इतिहास में कोई दूसरा सम्राट् भी ऐसा है, जिसने इस तरह सच्ची विजय प्राप्त की हो और सारी दुनियाँ में अपना धर्म राज्य स्थापित किया हो? जिन बातों को अव्यवहारिक और आदर्श-मात्र समझा जाता है, उनको अशोक ने कार्यरूप में परिणत करवाया। क्या इस विजय के द्वारा अशोक की राजनैतिक शक्ति किसी तरह से कम हुई?

बिल्कुल नहीं, बल्कि राजनैतिक शक्ति के साथ अन्य बातें जुड़ जाने से उसकी शक्ति और भी अधिक बढ़ गई थी।

राजनैतिक-दृष्टि को छोड़ कर यदि धार्मिक दृष्टि से विचार किया जाय, तो अशोक का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। अशोक ने बौद्ध-धर्म को स्वीकार किया था। यदि वह चाहता तो अपनी विशाल राजनैतिक शक्ति का प्रयोग बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए कर सकता था। अन्य धर्मों पर अत्याचार करके वह बौद्ध-धर्म को फैला सकता था। पर उसने ऐसा नहीं किया। अशोक ने सब धर्मों को समान दृष्टि से देखा। सब के साथ एक जैसा व्यवहार किया। सम्राट् की हैसियत से उसने कोई ऐसा कार्य नहीं किया, जिस से बौद्ध-धर्म को अनुचित लाभ पहुँचा हो। उसने बार-बार अपने शिला लेखों में सूचित किया है, कि "देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहते हैं कि सब सम्प्रदायों के मनुष्य एक साथ निवास करें। क्योंकि हर एक सम्प्रदाय के मनुष्य संयम और चित्त-शुद्धि चाहते हैं।" इसी के अनुसार अशोक ने सब सम्प्रदायों की समानरूप से रक्षा की। बौद्ध-श्रवणों और ब्राह्मणों को एक तरह का दान दिया। स्वयं बौद्ध होने के कारण वह अपना कर्त्तव्य समझता था कि बौद्ध-धर्म की सेवा करे, परन्तु ऐसा करने के लिए वह अपनी सम्राट् की स्थिति से अनुचित लाभ उठाना नहीं चाहता था। अतः बौद्ध-धर्म की सेवा के लिए समय-समय पर वह भिक्षु बन जाया करता था और राजकीय कर्त्तव्यों को युवराज और अमात्यों के हाथ में छोड़ कर स्वयं बौद्ध-धर्म की सेवा में तत्पर हो जाता था। उसने अपनी संतानों को बौद्ध-धर्म में

दीक्षित किया, उनके द्वारा प्रचार का कार्य किया। बौद्ध-संघ का प्रधान नेता और सहायक बन कर उसने इस धर्म को देश-देशान्तर में फैला दिया। परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि इस के लिए उसने राजनैतिक शक्ति का प्रयोग नहीं किया। इस के लिए तो उसने स्वयं पीले वस्त्र पहन कर अपनी संतान को भिक्षु बना कर उद्योग किया। बौद्ध-धर्म का संसार भर में जो प्रचार हुआ वह 'सम्राट् अशोक' का नहीं, किन्तु 'भिक्षु अशोक' का कार्य है। एक बार जब उसने राज्य को संघ के सुपुर्द करने का इरादा किया और इस प्रकार संघ को अपनी राजनीतिक शक्ति से सहायता पहुँचानी चाही, तो उसके मंत्रियों ने उसे सावधान किया और उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने के लिए युवराज को प्रेरणा की। दिव्यावदान* में इस घटना का बहुत अच्छा वर्णन किया गया है। मंत्रियों-द्वारा टोके जाने पर अशोक को अपनी शक्ति-हीनता का अनुभव हुआ। राज्य भर को संघ के लिए दान कर देने के स्थान पर उसने आधा आंवला दानरूप से भेज दिया और कहा—"यही आधा आँवला है, जिसे मैं अपना कह सकता हूँ।"

त्यागशूरो नरेन्द्रोऽसौ, अशोको मौर्य कुञ्जरः।
जम्बूद्वीपेश्वरो भूत्वा, जातोऽर्धामलकेश्वरः॥

अभिप्राय यह है कि बौद्ध-धर्म के प्रचार में अशोक सम्राट् की हैसियत से कोई सहायता आदि न कर सका। यह कार्य उसने समय-समय पर भिक्षु बन कर ही सम्पादित किया। बौद्ध-धर्म के प्रचार में अशोक का वही स्थान है, जो क्रिश्चियनटी में

* दिव्यावदान edited by Cowell and Neil.

'सेएट पाल' का और इस्लाम में 'ख़लीफ़ा उमर' का बौद्ध-धर्म अशोक के नेतृत्व में संसार का धर्म बना। यदि भ वान् बुद्ध ने बौद्ध-धर्म का प्रारम्भ किया; समानता, भ्रातृभा विश्वप्रेम और अहिंसा के सिद्धान्तों को मनुष्य-जाति सम्मुख रखा, तो अशोक ने उसे कार्य्य रूप में परिणत कर दिखा दिया और उनके संदेश को संसार के कोने-कोने में पहुँच दिया जिसके कारण वह संसार का धर्म बन गया।

परन्तु सम्राट् की हैसियत से उसने जिस धर्म का प्रचा किया, वह बौद्ध-धर्म नहीं था। वह तो सब धर्मों का निष्कर्ष धर्म का सर्व-सम्मत सिद्धान्त था। यह बात और है कि उस समय बौद्ध-धर्म अपने वास्तविक रूप में विद्यमान था और *अशोक मुख्य रूप से उसी का प्रचार करता था। वह अपनी* प्रजा के सम्मुख यह बात स्पष्ट कर देना चाहता था कि "धर्म यह है कि दास और सेवकों से उचित व्यवहार किया जाय, माता और पिता की सेवा की जाय, मित्र, परिचित, रिश्तेदार, श्रवण, और ब्राह्मणों को दान दिया जाय और प्राणियों की हिंसा न की जाय। धर्म की उन्नति और धर्म का आचरण इस बात में है कि दया, दान, सत्य, शौच, मृदुता और साधुता लोगों में बढ़े।" अपनी राजकीय-शक्ति का प्रयोग उसने इन्हीं बातों के प्रचार के लिए किया। वह इस बात को अच्छी तरह अनुभव करता था कि धर्म के ये तत्त्व अन्य सम्प्रदायों में भी विद्यमान हैं। इसीलिए लोगों की वास्तविक भलाई को अपने सम्मुख रख कर वह सब सम्प्रदायों के तत्त्व (सार) पर ही ज़ोर देता था। वह इस बात को अच्छी तरह समझता था कि सभी सम्प्रदायों में सत्य बातें एक समान हैं, केवल बाह्य आवरण का भेद है। यदि आन्तरिक तत्त्व पर ज़ोर दिया जाय, तो

भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के पारस्परिक भेदों का नाश हो कर एकता स्थापित हो सकती है।

सम्प्रदायों के पारस्परिक भेद को देख कर और यह देख कर कि सब सम्प्रदायों के अनुयायी अपनी-अपनी बात पर अनुचित रूप से ज़ोर दे रहे हैं, उसे बड़ा दुःख होता था। इसीलिए वह लिखता है:—

"देवताओं के प्रिय दान या पूजा को इतनी परवाह नहीं करते, जितनी इस बात की कि सब सम्प्रदायों के सार (तत्त्व) की वृद्धि हो। सम्प्रदायों के सार की वृद्धि कई प्रकार से होती है, पर उसकी जड़ वाक्-संयम है। अर्थात् लोग केवल अपने ही सम्प्रदाय का आदर और बिना कारण दूसरे सम्प्रदाय की निन्दा न करें। केवल विशेष कारणों के होने पर ही निन्दा होनी चाहिए, क्योंकि किसी न किसी कारण से सब सम्प्रदायों का आदर करना लोगों का कर्त्तव्य है। ऐसा करने से अपने सम्प्रदाय की उन्नति और दूसरे सम्प्रदायों का उपकार होता है। इसके विपरीत जो करता है वह अपने सम्प्रदाय को भी क्षति पहुँचाता है और दूसरे सम्प्रदायों का भी अपकार करता है। क्योंकि जो कोई अपने सम्प्रदाय की भक्ति में आ कर इस विचार से कि मेरे सम्प्रदाय का गौरव बढ़े, अपने सम्प्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरे सम्प्रदाय की, निन्दा करता है, वह वास्तव में अपने सम्प्रदाय को पूरी हानि पहुँचाता है। समवाय (मेल-जोल) अच्छा है, अर्थात् लोग एक दूसरे के धर्म को ध्यान दे कर सुनें और उसकी सेवा करें। क्योंकि देवताओं के प्रिय की यह इच्छा है कि सब सम्प्रदाय वाले बहुत विद्वान् और कल्याणकर कार्य करने वाले हों।"

वस्तुतः अशोक स्वयं भी इसी तरह आदर्श, धार्मिक सहिष्णुता का पालन करने वाला था और उसने अपनी सम्पूर्ण शक्ति के द्वारा इसी धार्मिक सहिष्णुता को कार्य रूप में परिणत कराने का प्रयत्न किया था। इस के लिए उसने धर्म-महामात्र, स्त्री-महामात्र, व्रज-भूमिक आदि राज-कर्मचारियों को नियुक्त किया। इस सहिष्णुता के होते हुए उस समय भारत की अवस्था कितनी उत्तम होगी, इसकी कल्पना सहज में ही की जा सकती है।

अशोक का वैयक्तिक जीवन भी आदर्श था। अन्य शक्तिशाली सम्राटों की तरह उस का जीवन भोगविलास और स्वच्छन्दतापूर्ण कार्यों में व्यतीत नहीं होता था, अपितु वह बहुत ही त्याग के साथ जीवन व्यतीत करता था। अपने शिला लेखों में उसने इस बात का ज़िक्र किया है, कि पहले वह भी सुख भोगता था, अपनी रसना की तृप्ति के लिए अनेक प्राणियों का वध करता था। परन्तु धीरे-धीरे सब कुछ छोड़ दिया और आदर्शरूप से जीवन व्यतीत किया। बौद्ध-ग्रन्थों के अनुसार अपने जीवन के प्रारम्भ काल में अशोक बहुत ही क्रूर और अत्याचारी था परन्तु बौद्ध-धर्म की शिक्षाओं से वह अपूर्व धर्मात्मा बन गया। बौद्धों की इन बातों का विश्वास चाहे किया जाय या न किया जाय, परन्तु यह तो सभी स्वीकार करते हैं कि अशोक एक धर्मात्मा और पवित्र जीवन व्यतीत करने वाला सम्राट् था। प्राणिमात्र उसके सन्मुख एक समान थे। उसकी सहानुभूति व दया का क्षेत्र केवल अपने देश या मनुष्य जाति तक ही सीमित न था, परन्तु प्राणिमात्र उसके लिए एक समान थे। सब की भलाई और कल्याण के लिये वह

समान-रूप से प्रयत्न करता था। पशुओं की चिकित्सा और आराम के लिए उसने अस्पताल आदि खुलवाये। पशु-हिंसा को बन्द कराने का निरन्तर उद्योग किया। परन्तु उसके सब उद्योग शान्त और अहिंसात्मक उपायों द्वारा होते थे। प्रेरणा और उपदेश द्वारा मनुष्यों को सीधे रास्ते पर लाना ही उसका उद्देश्य था। विचित्र बात तो यह है कि यह सब कुछ करते हुए उसमें अभिमान का लेश भी न था। वह बार-बार यही प्रकट करता था कि जो कुछ मैं कहता हूँ उसका उद्देश्य यह है कि मेरी प्रजा को इहलोक और परलोक दोनों में सुख प्राप्त हो। मनुष्य यश प्राप्ति के लिए अच्छे से अच्छा कार्य कर सकता है, परन्तु अशोक के सम्मुख यश व कीर्ति कुछ चीज़ ही न थी। इसीलिए वह लिखता है—"देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश या कीर्त्ति को अत्यन्त (परलोक के लिए) बड़ी भारी चीज़ नहीं समझते। जो कुछ यश या कीर्त्ति वे चाहते हैं वह इसलिए कि वर्तमान और भविष्य-काल में मेरी प्रजा धर्म की सेवा करे और धर्म के व्रत का पालन करे। केवल इसीलिए देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा यश-कीर्त्ति की इच्छा करते हैं। देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा जो कुछ भी पराक्रम करते हैं वह सब परलोक के लिए करते हैं, जिससे कि सब लोग विपत्ति से रहित हो जायँ।"

इन सब बातों को देख कर यदि हमें इतिहास में किसी ऐसे व्यक्ति को ढूँढ़ना है, जिससे अशोक की तुलना की जा सके तो हमें निराश ही होना पड़ेगा। कोई भी सम्राट् अशोक के सामने नहीं ठहर सकता। अनेक विद्वानों ने अशोक की तुलना रोमन-सम्राट् कौन्स्टेनटाइन से की है। जिस प्रकार कौन्स्टेनटाइन ने

क्रिश्चियनिटी को आश्रय देकर उसे रोमन साम्राज्य का राज-धर्म बना लिया और उसके कारण क्रिश्चियनिटी के विस्तार में बहुत सहायता मिली, इसी प्रकार अशोक ने बौद्ध-धर्म को राज-धर्म बना कर उसका विस्तार किया। यद्यपि यह बात ठीक है कि अशोक के कारण बौद्ध-धर्म का बहुत अधिक विस्तार हुआ, पर उसने उसके लिए राजकीय शक्ति का प्रयोग नहीं किया। यह बात हम ऊपर प्रदर्शित कर चुके हैं और यह भी अशोक के अद्वितीय व्यक्तित्व की ही विशेषता है।

प्रश्न

(१) 'सम्राट् अशोक' और 'भिक्षु अशोक' के क्या अर्थ होते हैं?

(२) 'स्यामशूरो···············जातोऽधर्मवद्वेश्वरः' में क्या रहस्य है?

(३) सम्राट् अशोक संसार में किन कार्यों से बड़े माने गये? संसार में उनका क्या स्थान है?

(४) अशोक का धार्मिक जीवन कैसा था?

(५) अशोक के जीवन में आपको कौनसी बात अनुकरणीय मालूम होती है?

(६) सम्राट् कौन्सटेन्टाइन तथा अशोक में क्या भेद था।

पुरस्कार

आर्द्रा नक्षत्र आकाश में काले-काले बादलों की घुमड़, जिसमें देव-दुन्दुभी का गम्भीर घोष। प्राचीन के एक निरभ्र कोने से स्वर्ण-पुरुष झाँकने लगा था—देखने लगा महाराज की सवारी। शैलमाला के अंचल में समतल उर्वरा-भूमि से सोंधी बास उठ रही थी। नगर-तोरण से जय-घोष हुआ, भीड़ में गजराज का चामरधारी शुण्ड उन्नत दिखाई पड़ा। हर्ष और उत्साह का यह समुद्र हिलोरें भरता हुआ आगे बढ़ने लगा।

प्रभात की हेम-किरणों से अनुरंजित नन्हीं-नन्हीं बूँदों का एक झोंका स्वर्ण-मल्लिका के समान बरस पड़ा। मंगल सूचना से जनता ने हर्ष-ध्वनि की।

रथों, हाथियों और अश्वारोहियों की पंक्ति जम गई। दर्शकों की भीड़ भी कम न थी। गजराज बैठ गया, सीढ़ियों से महाराज उतरे। सौभाग्यवती और कुमारी सुन्दरियों के दो दल, आम्र-पल्लवों से सुशोभित मंगल-कलश और फूल कुंकुम तथा खीलों से भरे थाल लिये, मधुर गान करते हुए आगे बढ़े।

महाराज के मुख पर मधुर मुस्क्यान थी। पुरोहित-वर्ग ने स्वस्त्ययन किया। स्वर्ण-रंजित हल की मूठ पकड़ कर महाराज ने जुते हुए सुन्दर पुष्ट बैलों को चलने का संकेत किया। बाजे बजने लगे। किशोरी कुमारियों ने खीलों और फूलों की वर्षा की।

कोशल का यह उत्सव प्रसिद्ध था। एक दिन के लिए महाराज को कृषक बनना पड़ता—उस दिन इन्द्र-पूजन की

धूमधाम होती, गोठ होती। नगर-निवासी उस पहाड़ी भूमि में आनन्द मनाते। प्रति वर्ष कृषि का यह महोत्सव उत्साह से सम्पन्न होता; दूसरे राज्यों से भी युवक राजकुमार इस उत्सव में आकर बड़े चाव से योग देते।

मगध का एक राजकुमार अरुण अपने रथ पर बैठा बड़े कौतूहल से यह दृश्य देख रहा था।

बीजों का एक थाल लिये कुमारी मधूलिका महाराज के साथ थी। बीज बोते हुए महाराज जब हाथ बढ़ाते तब मधूलिका उनके सामने थाल कर देती। यह खेत मधूलिका का था, जो इस साल महाराज की खेती के लिए चुना गया था। इसलिए बीज देने का सम्मान मधूलिका ही को मिला। वह कुमारी थी। सुन्दरी थी। कौशेय-वसन उसके शरीर पर इधर-उधर लहराता हुआ स्वयं शोभित हो रहा था। वह कभी उसे सम्हालती और कभी अपने रूखे अलकों को। कृषक-बालिका के शुभ्र भाल पर श्रम-कणों की भी कमी न थी। वे सब बरौनियों में गुँथे जा रहे थे। सम्मान और लज्जा उसके अधरों पर मन्द मुस्कराहट के साथ सिहर उठते, किन्तु महाराज को बीज देने में उसने शिथिलता न दिखलाई। सब लोग महाराज का हल चलाना देख रहे थे—विस्मय से, कौतूहल से। और अरुण देख रहा था, कृषक-कुमारी मधूलिका को। आह कितना भोला सौन्दर्य! कितनी सरल चितवन!

उत्सव का प्रधान कृत्य समाप्त हो गया। महाराज ने मधूलिका के खेत का पुरस्कार दिया, थाल में कुछ स्वर्ण-मुद्रायें। वह राजकीय अनुग्रह था। मधूलिका ने थाली सिर से लगाली,

किन्तु साथ ही उसमें की स्वर्ण-मुद्राओं को महाराज पर न्योछा-वर कर के बिखेर दिया। मधूलिका की उस समय की ऊर्जस्वित मूर्त्ति लोग आश्चर्य से देखने लगे। महाराज की भृकुटि भी ज़रा चढ़ी ही थी कि मधूलिका ने सविनय कहा:—

"देव! यह मेरे पितृ-पितामहों की भूमि है। इसे बेचना अपराध है, इसलिए मूल्य स्वीकार करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है।"

महाराज के बोलने के पहले ही वृद्ध मन्त्री ने तीखे स्वर से कहा—"अबोध! क्या बक रही है? राजकीय अनुग्रह का तिरस्कार! तेरी भूमि से चौगुना मूल्य है; फिर कोशल का यह सुनिश्चित राजकीय नियम है। तू आज से राजकीय रक्षण पाने की अधिकारिणी हुई; इस धन से अपने को सुखी बना।"

"राजकीय रक्षण की अधिकारिणी तो सारी प्रजा है मंत्रिवर!..........महाराज को भूमि समर्पण करने में तो मेरा कोई विरोध न था और न है, किन्तु मूल्य स्वीकार करना असम्भव है।" मधूलिका उत्तेजित हो उठी थी।

महाराज के संकेत करने पर मंत्री ने कहा—"देव! वाराणसी-युद्ध के अन्यतम वीरसिंह मित्र की यह एकमात्र कन्या है।" महाराज चौंक उठे—"सिंहमित्र की कन्या! जिसने मगध के सामने कोशल की लाज रखली थी, उसी वीर की मधूलिका कन्या है?"

"हाँ, देव!" सविनय मंत्री ने कहा।

"इस उत्सव के परम्परागत नियम क्या हैं मंत्रिवर?" महाराज ने पूछा।

"देव, नियम तो बहुत साधारण हैं। किसी भी अच्छी भूमि को इस उत्सव के लिए चुन कर नियमानुसार पुरस्कार-स्वरूप उसका मूल्य दे दिया जाता है। वह भी अत्यन्त अनुग्रह-पूर्वक अर्थात् भूसम्पत्ति का चौगुना मूल्य उसे मिलता है। उस खेती को वही व्यक्ति वर्ष भर देखता है। वह राजा का खेत कहा जाता है।"

महाराज को विचार-संघर्ष से विश्राम की अत्यन्त आवश्यकता थी। महाराज चुप रहे। जय-घोष के साथ सभा विसर्जित हुई। सब अपने-अपने शिविरों में चले गये। किन्तु मधूलिका को उत्सव में फिर किसी ने न देखा। वह अपने खेत की सीमा पर विशाल मधूक वृक्ष के चिकने हरे पत्तों की छाया में अनमनी चुपचाप बैठी रही।

× × × ×

रात्रि का उत्सव अब विश्राम ले रहा था। राजकुमार अरुण उसमें सम्मिलित नहीं हुआ—वह अपने विश्राम-भवन में जागरण कर रहा था। आँखों में नींद न थी। प्राची में जैसी गुलाली खिल रही थी, वही रंग उसकी आँखों में था। सामने देखा तो मुंडेर पर कपोती एक पैर पर खड़ी पंख फैलाये अँगड़ाई ले रही थी। अरुण उठ खड़ा हुआ। द्वार पर सुसज्जित अश्व था, वह देखते-देखते नगर-तोरण पर जा पहुँचा। रक्षकगण ऊँघ रहे थे। वे अश्व के पैरों के शब्द से चौंक उठे।

युवक कुमार तीर-सा निकल गया। सिन्धु देश का तुरंग प्रभात के पवन से पुलकित हो रहा था। घूमता-घूमता अरुण

उसी मधूक वृक्ष के नीचे पहुँचा, जहाँ मधूलिका अपने हाथ पर सिर धरे हुए खिन्न निद्रा का सुख ले रही थी।

अरुण ने देखा, एक छिन्न माधवी-लता वृक्ष की शाखा से च्युत होकर पड़ी है। सुमन मुकुलित थे, भ्रमर निस्पन्द! अरुण ने अपने अश्व को मौन रहने का संकेत किया, उस सुषमा को देखने के लिए। परन्तु कोकिल बोल उठी। उसने अरुण से प्रश्न किया—"छिः, कुमारी के सोये हुए सौंदर्य पर दृष्टिपात करने वाले धृष्ट, तुम कौन?" मधूलिका की आँखें खुल पड़ीं। उसने देखा, एक अपरिचित युवक। वह संकोच से उठ बैठी। "भद्रे! तुम्हीं न कल के उत्सव की संचालिका रही हो?"

"उत्सव! हाँ उत्सव ही तो था।"

"कल उस सम्मान......"

"क्यों आपको कल का स्वप्न सता रहा है? भद्र! आप क्या मुझे इस अवस्था में सन्तुष्ट न रहने देंगे?"

"मेरा हृदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया है, देवि!"

"मेरे उस अभिनय का—मेरी विडम्बना का। आह! मनुष्य कितना निर्दय है! अपरिचित, क्षमा करो! जाओ अपने मार्ग।"

"सरलता की देवि! मैं मगध का राजकुमार तुम्हारे अनुग्रह का प्रार्थी हूँ–मेरे हृदय की भावना अवगुण्ठन में रहना नहीं जानती। उसे अपनी......"

"राजकुमार! मैं कृषक-बालिका हूँ। आप नन्दनविहारी और मैं पृथ्वी पर परिश्रम करके जीने वाली। आज मेरी स्नेह की भूमि पर से मेरा अधिकार छीन लिया गया है। मैं दुःख से विकल हूँ। मेरा उपहास न करो!"

"मैं कोशल-नरेश से तुम्हारी भूमि तुम्हें दिलवा दूँगा।"

"नहीं, वह कोशल का राष्ट्रीय नियम है। मैं उसे बदलना नहीं चाहती—चाहे उससे मुझे कितना ही दुःख हो।"

"तब तुम्हारा रहस्य क्या?"

"यह रहस्य मानव-हृदय का है, मेरा नहीं। राजकुमार, नियमों से यदि मानव-हृदय बाध्य होता तो आज मगध के राजकुमार का हृदय किसी राजकुमारी की ओर न खिंच कर एक कृषक-बालिका का अपमान करने न आता। मधूलिका उठ खड़ी हुई।

चोट खाकर राजकुमार लौट पड़ा। किशोर किरणों में उसका रत्न-किरीट चमक उठा। अश्व वेग से चला जा रहा था और मधूलिका निष्ठुर प्रहार करके क्या स्वयं आहत न हुई? उसके हृदय में टीस-सी होने लगी। वह सजल नेत्रों से उड़ती हुई धूल देखने लगी।

×　　　×　　　×

मधूलिका ने राजा का प्रतिदान, अनुग्रह नहीं लिया। वह दूसरे खेतों में काम करती और चौथे पहर रूखी-सूखी खाकर पड़ रहती। मधूक की वृक्ष के नीचे एक छोटी-सी पर्ण-कुटीर थी। सूखे डंठलों से उसकी दीवार बनी थी। मधूलिका का वही आश्रम था। कठोर परिश्रम से जो रूखा अन्न मिलता वही

उसकी साँसों को बढ़ाने के लिए पर्याप्त था। दुबली होने पर भी उसके अङ्ग पर तपस्या की कान्ति थी। आस-पास के कृषक उसका आदर करते। वह एक आदर्श-बालिका थी। दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष बीतने लगे।

शीतकाल की रजनी, मेघों से भरा आकाश, जिसमें बिजली की दौड़-धूप। मधूलिका का छाजन टपक रहा था, ओढ़ने की कमी थी। वह ठिठुर कर एक कोने में बैठी थी। मधूलिका अपने अभाव को आज बढ़ा कर सोच रही थी। जीवन से सामंजस्य बनाये रखनेवाले उपकरण तो अपनी सीमा निर्धारित रखते हैं, परन्तु उनकी आवश्यकता और कल्पना भावना के साथ बढ़ती-घटती रहती है। आज बहुत दिनों पर उसे बीती हुई बात स्मरण हुई—"दो, नहीं- नहीं, तीन वर्ष हुए होंगे, इसी मधूक के नीचे, प्रभात में—तरुण राजकुमार ने क्या कहा था ?"

वह अपने हृदय से पूछने लगी—उन चाटुकी के शब्दों के सुनने के लिए उत्सुक-सी वह पूछने लगी—"क्या कहा था ?" दुख-दग्ध हृदय उन स्वप्न-सी बातों को स्मरण रख सकता और स्मरण ही होता तो भी कष्टों की इस काली निशा में वह कहने का साहस करता ! हायरी विडम्बना !

आज मधूलिका उस बीते हुए क्षण को लौटा लेने के लिए विकल थी। असहाय दारिद्र्य की ठोकरों ने उसे व्यथित और अधीर कर दिया है। मगध की प्रासाद-माला के वैभव का काल्पनिक चित्र—उन सूखे डंठलों की रन्ध्रों से नीचे नभ में—बिजली के आलोक में—नाचता हुआ दिखाई देने लगा। खिलवाड़ी शिशु जैसे श्रावण की सन्ध्या में जुगनू को पकड़ने के

लिए हाथ लपकाता है वैसे ही मधूलिका 'अभी यह, यह निकल गया।" मन ही मन कह रही थी। वर्षा ने भीषण रूप धारण किया। गड़गड़ाहट बढ़ने लगी। ओले पड़ने की सम्भावना थी। मधूलिका अपनी जर्जर झोपड़ी के लिए काँप उठी। सहसा बाहर कुछ शब्द हुआ।

"कौन है यहाँ? पथिक को आश्रय चाहिए।"

मधूलिका ने डंठलों का कपाट खोल दिया। बिजली चमक उठी। उसने देखा, एक पुरुष घोड़े की डोर पकड़े खड़ा है। सहसा वह चिल्ला उठी—"राजकुमार!"

"मधूलिका?" आश्चर्य से युवक ने कहा।

एक क्षण के लिए सन्नाटा छा गया। मधूलिका अपनी कल्पना को सहसा प्रत्यक्ष देख कर चकित हो गई, "इतने दिनों के बाद आज फिर?"

अरुण ने कहा—"कितना समझाया मैंने—परन्तु......"

मधूलिका अपनी दयनीय अवस्था पर संकेत करने देना नहीं चाहती थी। उसने कहा—"और आज आपकी यह क्या दशा है?"

सिर झुका कर अरुण ने कहा—"मैं मगध का विद्रोही निर्वासित कोशल में जीविका खोजने आया हूँ।"

मधूलिका उस अन्धकार में हँस पड़ी—"मगध के विद्रोही राजकुमार का स्वागत करे एक अनाथिनी कृषक-बालिका! यह भी एक विडम्बना है! तो भी मैं स्वागत के लिए प्रस्तुत हूँ।"

\+ + + +

शीतकाल की निस्तब्ध रजनी, कुहरे से धुली हुई चाँदनी, हाड़ कँपा देने वाला समीर, तो भी अरुण और मधूलिका दोनों पहाड़ी गह्वर के द्वार पर वट-वृक्ष के नीचे बैठे हुए बातें कर रहे हैं। मधूलिका की वाणी में उत्साह था, किन्तु अरुण जैसे अत्यन्त सावधान होकर बोलता हो!

मधूलिका ने पूछा—"जब तुम इतनी विपन्न अवस्था में हो तो फिर इतने सैनिकों को साथ रखने की क्या आवश्यकता है?"

"मधूलिका! बाहुबल ही तो वीरों की आजीविका है। ये मेरे जीवन-मरण के साथी हैं। भला मैं इन्हें कैसे छोड़ देता? और करता ही क्या?"

"क्यों? हम लोग परिश्रम से कमाते और खाते हैं। अब तो तुम × × ×।"

"भूल न करो, मैं अपने बाहुबल पर भरोसा करता हूँ। नये राज्य की स्थापना कर सकता हूँ। निराश क्यों हो जाऊँ?" अरुण के शब्दों में कम्पन था; वह जैसे कुछ कहना चाहता था, पर कह न सकता था।"

"नवीन राज्य! ओहो, तुम्हारा उत्साह तो कम नहीं। भला कैसे? कोई ढंग बताओ तो मैं भी कल्पना का आनन्द ले लूँ।"

"कल्पना का आनन्द नहीं मधूलिका, मैं तुम्हें राजरानी के सम्मान में सिंहासन पर बिठाऊँगा! तुम अपने छिने हुए खेत की चिन्ता करके भयभीत न हो।"

एक क्षण में सरला मधूलिका के मन में प्रमाद का अन्धड़ बहने लगा—द्वन्द्व मच गया। उसने सहसा कहा—"आह, मैं सचमुच आज तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती थी, राजकुमार!"

अरुण ढिठाई से उसके हाथों को दबा थ
भ्रम था, तुम सचमुच मुझे प्यार करती हो !

युवती का वक्षस्थल फूल उठा, वह हाँ भ
ना भी नहीं। अरुण ने उसकी अवस्था का अ
कुशल मनुष्य के समान उसने अवसर को
दिया। तुरन्त बोल उठा—"तुम्हारी इच्छा
प्राण लगा कर मैं तुम्हें इसी कोशल के सिंहास
मधूलिका, अरुण के खड्ग का आतंक देखोगी
एक बार काँप उठी। वह कहना चाहती थी,
उसके मुँह से निकला, "क्या ?"

"सत्य, मधूलिका, कोशल-नरेश तभी से
चिन्तित है। यह मैं जानता हूँ, तुम्हारी साधारण
वह अस्वीकार न करेंगे। और मुझे यह भी विदित
के सेनापति अधिकांश सैनिकों के साथ पहाड़ी
दमन करने के लिए बहुत दूर चले गये हैं।"

मधूलिका की आँखों के आगे बिजलियाँ हँस
दारुण भावना से उसका मस्तक विकृत हो उठा
कहा—"तुम बोलती नहीं हो ?"

"जो कहोगे वही करूँगी"—मंत्रमुग्ध-सी मधूलिका

× × ×

स्वर्ण-मंच पर कोशल-नरेश अधलेटी, अर्द्ध-निद्रित
में आँखें मुकुलित किये हैं। एक चामरधारिणी युव
खड़ी अपनी कलाई बड़ी कुशलता से घुमा रही है। च

शुभ्र आन्दोलन उस प्रकोष्ठ में धीरे-धीरे संचलित हो रहे हैं। ताम्बूल-वाहिनी प्रतिमा के समान दूर खड़ी है।

प्रतिहारी ने आकर कहा—"जय हो देव ! एक स्त्री कुछ प्रार्थना करने आई है।"

आँख खोलते हुए महाराज ने कहा—"स्त्री ! प्रार्थना करने आई है ? आने दो।"

प्रतिहारी के साथ मधूलिका आई। उसने प्रणाम किया। महाराज ने स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखा और कहा—"तुम्हें कहीं देखा है।"

"तीन बरस हुए देव ! मेरी भूमि खेती के लिए ली गई थी।"

"ओह, तो तुमने इतने दिन कष्ट में बिताये ! आज उसका मूल्य माँगने आई हो, क्यों ? अच्छा, अच्छा तुम्हें मिलेगा। प्रतिहारी !"

"नहीं महाराज, मुझे मूल्य नहीं चाहिए ?"

"मूर्खे ! फिर क्या चाहिए ?"

"उतनी ही भूमि, दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की जंगली भूमि। वहीं मैं अपनी खेती करूँगी। मुझे एक सहायक मिल गया है। वह मनुष्यों से मेरी सहायता करेगा; भूमि को समतल भी तो बनाना होगा।"

महाराज ने कहा—"कृषक बालिके ! वह बड़ी ऊबड़-खाबड़ भूमि है। तिस पर वह दुर्ग के समीप एक सैनिक महत्त्व रखती है।"

"तो फिर निराश लौट जाऊँ ?"

"सिंह-मित्र की कन्या ! मैं क्या करूँ ? तुम्हारी यह प्रार्थना...... !"

"देव ! जैसी आज्ञा हो।"

"जाओ, तुम श्रमजीवियों को उसमें लगाओ। मैं अमात्य को आज्ञापत्र देने का आदेश करता हूँ।"

"जय हो देव !" कह कर प्रणाम करती हुई मधूलिका राज-मन्दिर के बाहर आई।

× × × ×

दुर्ग के दक्षिण, भयावने नाले के तट पर, घना जङ्गल है। आज वहाँ मनुष्यों के पद-संचार से शून्यता भंग हो रही थी। अरुण के छिपे हुए मनुष्य स्वतंत्रता से इधर-उधर घूमते थे। झाड़ियों को काट कर पथ बन रहा था। नगर दूर था; फिर उधर यों ही कोई नहीं आता था। फिर अब तो महाराज की आज्ञा से वहाँ मधूलिका का अच्छा खेत बन रहा था। किसको इसकी चिन्ता थी ?

एक घने कुंज में अरुण और मधूलिका एक दूसरे को हर्षित नेत्रों से देख रहे थे। संध्या हो चली थी। उस निविड़ वन में उन नवागत मनुष्यों को देख कर पक्षीगण अपने नीड़ को लौटते हुए अधिक कोलाहल कर रहे थे।

प्रसन्नता से अरुण की आँखें चमक उठीं। सूर्य की अन्तिम किरणें झुरमुट से घुसकर मधूलिका के कपोलों से खेलने लगीं। अरुण ने कहा—"चार पहर और विश्वास करो और प्रभात में ही इस जीर्ण कलेवर कोशल राष्ट्र की राजधानी श्रावस्ती में

तुम्हारा अभिषेक होगा । और मगध से निर्वासित मैं, एक स्वतंत्र राष्ट्र का अधिपति बनूँगा, मधूलिके !"

"भयानक ! अरुण तुम्हारा साहस देख कर मैं चकित हो रही हूँ। केवल सौ सैनिकों से तुम......"

"रात के तीसरे पहर मेरी विजय-यात्रा होगी मधूलिके !"

"तो तुमको इस विजय पर विश्वास है ?"

'अवश्य। तुम अपनी झोंपड़ी में यह रात बिताओ; प्रभात से तो राज-मन्दिर ही तुम्हारा लीला-निकेतन बनेगा।"

मधूलिका प्रसन्न थी; किन्तु अरुण के लिए उसकी कल्याण-कामना सशंक थी। वह कभी-कभी उद्विग्न-सी होकर बालकों के समान प्रश्न कर बैठती । अरुण उसका समाधान कर देता । सहसा कोई संकेत पाकर उसने कहा—"अच्छा, अन्धकार अधिक हो गया। अभी तुम्हें दूर जाना है और मुझे भी प्राण-पण से इस अभियान के प्रारम्भिक कार्यों को अर्ध-रात्रि तक पूरा कर लेना चाहिए। इसलिए रात्रि भर के लिए विदा !"

मधूलिका उठ खड़ी हुई। कँटीली झाड़ियों से उलझती हुई, क्रम से बढ़ने वाले अन्धकार में, वह अपनी झोंपड़ी की ओर चली।

× × × ×

पथ अन्धकार-मय था और मधूलिका का हृदय भी निबिड़-तम से घिरा था । उसका मन सहसा विचलित हो उठा, मधुरता नष्ट हो गई। जितनी सुख-कल्पना थी, वह जैसे अन्धकार में विलीन होने लगी। वह भयभीत थी। पहला भय उसे अरुण के लिए उत्पन्न हुआ, यदि वह सफल न हुआ तो ? फिर

सहसा सोचने लगी, यह क्यों सफल हो ? श्रावस्ती दुर्ग प
विदेशी के अधिकार में क्यों चला जाय ? मगध कोशल क
चिर-शत्रु ! ओह, उसकी विजय ! कोशल नरेश ने क्या कहा
था–"सिंह-मित्र की कन्या !" सिंह-मित्र कोशल का रक्षक वीर,
उसी की कन्या आज क्या करने जा रही है ? नहीं, नहीं।
'मधूलिका ! मधूलिका !!' जैसे उसके पिता उस अन्धकार में
पुकार रहे थे । वह पगली की तरह चिल्ला उठी ! रास्ता
भूल गई ।

रात एक पहर बीत चली, पर मधूलिका अपनी झोंपड़ी
तक न पहुँची । वह उधेड़-बुन में विक्षिप्त-सी चली जा रही थी।
उसकी आँखों के सामने कभी सिंह-मित्र और कभी अरुण
की मूर्त्ति अन्धकार में चित्रित हो जाती। उसे सामने आलोक
दिखाई पड़ा । वह बीच पथ में खड़ी हो गई । प्रायः एक सौ
उल्काधारी अश्वारोही चले आ रहे थे और आगे-आगे
एक वीर अधेड़ सैनिक था । उसके बायें हाथ में
अश्व की वल्गा और दाहिने हाथ में नग्न खड्ग । अत्यन्त
धीरता से वह टुकड़ी अपने पथ पर चल रही थी। परन्तु
मधूलिका बीच पथ से हिली नहीं । प्रमुख सैनिक पास आ गया,
पर मधूलिका अब भी नहीं हटी । सैनिक ने अश्व रोक कर
कहा—"कौन" ? कोई उत्तर नहीं मिला । तब तक दूसरे अश्वा-
रोही ने कड़क कर कहा—"तू कौन है स्त्री ? कोशल के सेना-
पति को शीघ्र उत्तर दे !"

रमणी जैसे विकार-ग्रस्त स्वर में चिल्ला उठी—"बाँध लो
मुझे, बाँध लो ! मेरी हत्या करो । मैंने अपराध ही ऐसा
किया है।"

सेनापति हँस पड़े। बोले—"पगली है।"

"पगली! नहीं यदि वही होती तो इतनी विचार-वेदना क्यों होती? सेनापति! मुझे बाँध लो। राजा के पास ले चलो।"

"क्या है! स्पष्ट कह!"

"श्रावस्ती का दुर्ग एक प्रहर में दस्युओं के हस्तगत हो जायगा। दक्षिणी नाले के पार उनका आक्रमण होगा।"

सेनापति चौंक उठे। उन्होंने आश्चर्य से पूछा—"तू क्या कह रही है?"

"मैं सत्य कह रही हूँ; शीघ्रता करो।"

सेनापति ने अस्सी सैनिकों को नाले की ओर धीरे-धीरे बढ़ने की आज्ञा दी और स्वयं बीस अश्वारोहियों के साथ दुर्ग की ओर बढ़े। मधूलिका एक अश्वारोही के साथ बाँध दी गई।

\+ + +

श्रावस्ती का दुर्ग, कोशल राष्ट्र का केन्द्र, इस रात्रि में अपने विगत वैभव का स्वप्न देख रहा था। भिन्न राजवंशों ने उसके प्रान्तों पर अधिकार जमा लिया है। अब वह कई गाँवों का अधिपति है। फिर भी उसके साथ कोशल के अतीत की स्वर्ण-गाथायें लिपटी हैं। वही लोगों की ईर्षा का कारण है। दुर्ग के प्रहरी चौंक उठे, जब थोड़े से अश्वारोही बड़े वेग से आते हुए दुर्ग द्वार पर रुके। जब उल्का के आलोक में उन्होंने सेनापति को पहचाना, तब द्वार खुला। सेनापति घोड़े की पीठ से उतरे। उन्होंने कहा—"अग्निसेन! दुर्ग में कितने सैनिक होंगे?"

"सेनापति की जय हो! दो सौ।"

"उन्हें शीघ्र एकत्र करो; परन्तु बिना किसी शब्द के। १०० को लेकर तुम शीघ्र ही चुपचाप दुर्ग के दक्षिण की श्र चलो। आलोक और शब्द न हो।"

सेनापति ने मधूलिका की ओर देखा। वह खोल दी गं उसे अपने पीछे आने का संकेत कर सेनापति राज-मन्दिर ब ओर बढ़े। प्रतिहारी ने सेनापति को देखते ही महाराज क सावधान किया। वह अपनी सुख-निन्द्रा के लिए प्रस्तुत हं रहे थे। किन्तु सेनापति और साथ में मधूलिका को देखते ही चंचल हो उठे। सेनापति ने कहा—"जय हो देव! इस स्त्री के कारण मुझे इस समय उपस्थित होना पड़ा है।"

महाराज ने स्थिर नेत्रों से देख कर कहा—"सिंह-मित्र की कन्या, फिर यहाँ क्यों? क्या तुम्हारा क्षेत्र नहीं बन रहा है? कोई बाधा? सेनापति! मैंने दुर्ग के दक्षिणी नाले के समीप की भूमि इसे दी है। क्या उसी सम्बन्ध में तुम कहना चाहते हो?"

"देव! किसी गुप्त शत्रु ने उसी ओर से आज की रात में दुर्ग पर अधिकार कर लेने का प्रबन्ध किया है। और इसी स्त्री ने मुझे पथ में यह सन्देशा दिया है।"

राजा ने मधूलिका की ओर देखा। वह काँप उठी। घृणा और लज्जा से वह गड़ी जा रही थी। राजा ने पूछा—"मधूलिका, यह सत्य है?"

"हाँ, देव!"

राजा ने सेनापति से कहा—"सैनिकों को एकत्र करके तुम चलो, मैं अभी आता हूँ।" सेनापति के चले जाने पर राजा ने कहा—"सिंह-मित्र की कन्या! तुमने एक बार फिर कोशल का

उपकार किया। यह सूचना देकर तुमने पुरस्कार का काम किया है। अच्छा, तुम यहीं ठहरो। पहले उन आततायियों का प्रबन्ध कर लूँ।"

× × × ×

अपने साहसिक अभिमान में अरुण बन्दी हुआ और दुर्ग उल्का के आलोक में अतिरंजित हो गया। भीड़ ने जयघोष किया। सबके मन में उल्लास था। श्रावस्ती दुर्ग आज एक दस्यु के हाथ में जाने से बचा। आबाल-वृद्ध-नारी आनन्द से उन्मत्त हो उठे।

उषा के आलोक में सभा-मंडप दर्शकों से भर गया। बन्दी अरुण को देखते ही जनता ने रोष से हुँकार की—"वध करो!" राजा ने सब से सहमत होकर कहा, "प्राणदण्ड।" मधूलिका, बुलाई गई। वह पगली-सी आकर खड़ी हो गई। कोशल-नरेश ने पूछा—"मधूलिका, तुझे जो पुरस्कार लेना हो, माँग।" वह चुप रही।

राजा ने कहा—"मेरे निज की जितनी खेती है, मैं सब तुझे देता हूँ।" मधूलिका ने एक बार बन्दी अरुण की ओर देखा। उसने कहा "मुझे कुछ न चाहिए।" अरुण हँस पड़ा! राजा ने कहा—"नहीं, मैं तुझे अवश्य दूँगा। माँग ले।"

"तो मुझे भी प्राणदण्ड मिले।" कहती हुई वह बन्दी अरुण के पास जा खड़ी हुई।

प्रश्न

(1) मधूलिका का चरित्र चित्रण करो?

(2) उपर्युक्त गद्य से क्या शिक्षा मिलती है?

द्रौपदी, भीम और युधिष्ठिर के भाषण

द्रौपदी ने मन ही मन कहा—"कठोर उपालम्भ द्वारा राजा युधिष्ठिर को उत्तेजित करने के लिए यह मौक़ा बहुत अच्छा है। उसने सोचा कि ऐसे उपालम्भ को सुन कर युधिष्ठिर को अवश्य ही क्रोध आ जायगा और वे दुर्योधन आदि शत्रुओं से उनके द्वारा किये गये अपकारों का बदला लेने के लिए अवश्य ही तैयार हो जायँगे।' वह बोली—

"महाराज, आप राजा हैं। आप नीतज्ञ हैं। आप विद्वान हैं। आप समझदार हैं। मैं एक तो अज्ञ, दूसरे स्त्री हूँ। यदि मैं आपके सामने कोई हित की भी बात कहूँ तो मेरा ऐसा कहना भी अनुचित ही समझा जायगा। सम्भव है, उसे आप अपनी निन्दा या तिरस्कार समझें। अतएव ऐसे विषय में मुझे कुछ भी न बोलना चाहिए था। परन्तु क्या करूँ, बिना बोले मुझ से रहा ही नहीं जाता। शत्रुओं ने वस्त्र-हरण और केशाकर्षण आदि के रूप में मेरी जो विडम्बना की है, उसकी याद आते ही मुझे दुःसह दुख होता है। वही दुःख मुझे इस समय बोलने के लिए प्रेरणा कर रहा है। अतएव मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे इस उपालम्भ के लिए क्षमा करें।

"महाराज, आप के वंश में जो राजा हो गये हैं वे ऐसे-वैसे न थे। वे इन्द्र के सदृश तेजस्वी और इन्द्र ही के समान पराक्रमी थे। आप हा के वंशज ये परम-प्रतापी राजा चिरकाल से इस पृथ्वी का पालन करते आये हैं। परन्तु उसी वंश में आप ऐसे निकले कि इस चिरकाल से धारण की हुई पृथ्वी को अपने ही हाथ से इस-तरह-निकाल फेंका, जिस तरह कि

मतवाला हाथी फूलों की माला तोड़ कर अपने मस्तक से फेंक देता है। आप तो सभी के साथ साधुता का व्यवहार करने को तुले बैठे रहते हैं। मायावियों के साथ मायावी होना ही चाहिए। जो ऐसों के साथ भी सचाई का बर्त्ताव करते हैं, उनका पराभव हुए बिना नहीं रहता। बिना कवच के शरीर को छेद कर तीखे बाण जैसे मनुष्य के प्राण ले लेते हैं, वैसे ही भोले-भाले साधु-स्वभाव वाले मनुष्यों के हृदय में घुस कर शठ मनुष्य उनका नाश किये बिना नहीं रहते।

"मैं आपकी बुद्धि की कहाँ तक प्रशंसा करूँ? आप अपने को क्षत्रिय-कुल में उत्पन्न समझते हैं या नहीं? आपको अपने क्षत्रियत्व का कुछ भी अभिमान है या नहीं? आपको बन्धु-बान्धव और सेना-समूह आदि किसी भी साधन की कभी कमी नहीं रही। पृथ्वी भी आप पर सब तरह अनुरक्त थी। प्रजा भी आपको जी से चाहती थी। फिर भी आपने इस अनुरागिणी वसुमती का परित्याग कर दिया। कुलीन, सुशील और मनोहारिणी पत्नी के सदृश अपनी राज्य-लक्ष्मी का हरण अपने शत्रुओं के द्वारा करा कर ही आपने कल की। आपके सिवा संसार में ऐसा कौन मनुष्य होगा, जो परम्परा से प्राप्त हुई विवाहिता भार्या के सदृश अपनी राज्य-लक्ष्मी को इस तरह निकाल बाहर करे? क्या आपको यही चाहिए था?

"याद रखिए, जो मनुष्य क्रुद्ध होकर दण्ड और प्रसन्न हो कर अनुग्रह करने में समर्थ होता है, उसकी अनुकूलता सब लोग, आप ही आप, बिना किसी प्रेरणा के, करने लगते हैं। बुरे आदमी दण्ड पाने के डर से और भले आदमी अनुग्रह की आशा से सदा ही उसके मन के अनुकूल काम करने के लिए

तैयार रहते हैं। परन्तु जिसे कभी क्रोध आता ही नहीं उसके स्नेह और सत्कार की कोई परवा नहीं करता। यदि ऐसे क्रोध-हीन मनुष्य ने किसी का द्वेष किया अथवा किसी पर अप्रसन्नता प्रकट की तो उससे कोई डरता भी नहीं।

"ज़रा अपने छोटे भाई महारथी भीम की तरफ़ तो आँख उठा कर देखिए, यह वही भीमसेन है, जिसके शरीर पर लाल चन्दन का लेप किया जाता था और जो बहुमूल्य रथ पर ही सवार होकर बाहर निकलता था। वही अब, काँटे बिछे हुए पहाड़ी पथों पर पैदल घूमता फिरता है और झाड़ियों के नीचे ज़मीन पर धूल में पड़े लोटा करता है! आप अच्छे सत्यघन निकले! आपके सत्यव्रत की मैं कहाँ तक प्रशंसा करूँ! देखिए, महापराक्रमी धनञ्जय की भी दुर्गति हो रही है। यह भी आप ही के कारण! यह वही धनञ्जय है, जो सारे उत्तर-कुरु-देश को जीत कर हीरे, पन्ने, लाल आदि अकृत्रिम रत्नों की राशियाँ यहाँ से ले आया था। उसने उन रत्नों को आप ही नहीं रख लिया बल्कि उन्हें आप ही को दे डाला। परन्तु इसका बदला आपने उसे बहुत ही अच्छा दिया! इस इन्द्रतुल्य पराक्रमी अर्जुन से आप अपने पहनने के लिए पेड़ों की छाल मँगाया करते हैं! अच्छा काम उसे आपने सौंपा! कहाँ उसका यह पराक्रम और कहाँ वल्कल लाने का यह काम! महाराज, अर्जुन की यह दैन्यावस्था देख कर भी क्या आपको दुःख नहीं होता?

"नकुल और सहदेव की दुर्दशा की भी सीमा नहीं। नकुल को इस कँकरीली भूमि पर लेटने के कारण, देखिए, उनके शरीर

की कितनी दुर्गति हुई है! उनके शरीर कठोर हो गये हैं। उन पर सर्वत्र गड्ढे पड़ गये हैं! धोये न जाने और तेल-फुलेल न लगने के कारण उनके बाल बेतरह रूखे हो रहे हैं। यहाँ तक कि उनकी जटायें बन गई हैं। इतने पर भी आप अपनी सन्तोषवृत्ति का पीछा नहीं छोड़ते! प्रतिज्ञा-पालन पर आप अब तक पूर्ववत् ही दृढ़ हैं! अरे, अब तो उसे छोड़ देते!

"जिस समय आप राजसी ठाठ से रहते थे। उस समय आपके ये दोनों चरण रत्नों से जड़े हुए सोने के बहुमूल्य सिंहासन की शोभा बढ़ाते थे। बड़े-बड़े माण्डलिक राजे आपके सामने उपस्थित होकर अपने मस्तक इन्हीं चरणों पर रखते थे। ऐसा करते समय उनके मस्तकों पर धारण की गई फूल-मालाओं के सुगन्धित फूलों के रजःकण आपके चरणों पर गिर-गिरकर उनको रङ्गीन बना देते थे। हाय! आज आपके उन्हीं चरणों की दुर्दशा हो रही है। उन्हीं से आज आप इस घास उगी हुई पहाड़ी भूमि पर सर्वत्र आया-जाया करते हैं। घास ही उगी भूमि पर क्यों, कटीले कुश उगी हुई भूमि पर भी।

"महाराज, अब तो आप अपनी शान्ति को—अपनी क्षमा को—छोड़ दीजिए। इस सारे अनर्थ का कारण एकमात्र आप की यह क्षमा ही है। उसका अब तत्काल ही परित्याग करके शत्रुओं के नाश के लिए तैयार हो जाइये। अपने क्षत्रिय-तेज को फिर से स्वीकार कीजिये। प्रसन्न हो जाइये। बहुत भोग भोग चुके। अब बस। आप शायद यह कहें कि क्षमा से ही यदि काम बनता हो तो क्रोध करने की क्या आवश्यकता है? परन्तु, महाराज, काम-क्रोध आदि षड् रिपुओं को जीत कर क्षमा से किसे सिद्धि प्राप्त होती है। यह भी आप जानते हैं कि इस तरह की सिद्धि ऋषियों और मुनियों ही को प्राप्त होती

है, क्षत्रियों की नहीं। सो भी कौन-सी सिद्धि? मोक्ष-सिद्धि; राज-सिद्धि नहीं। समझे। आपको मैं कहाँ तक समझाऊँ।

"आप तो तेजस्वी पुरुष हैं। मैं तो आपको तेजस्वियों में सब से श्रेष्ठ समझती हूँ। कीर्ति भी आप की कम नहीं। आप तो कीर्ति को ही अपना सर्वोत्तम धन समझते आये हैं। बल-पौरुष भी आप में कम नहीं। इन सब बातों के होते हुए भी यदि आप शत्रुओं के द्वारा किये गये अति दुःसह पराभव को प्राप्त होकर भी क्षमा ही करते चले जायँगे—यदि आप सन्तोष ही को स्वीकार करते चले जायँगे—तो मैं यही समझूँगी कि आत्माभिमानी पुरुषों का अभिमान, आश्रयहीन हो जाने के कारण, आज ही रसातल को चला गया! यदि शत्रुओं की बुराई का प्रतिकार करना आपको फिर भी अभीष्ट न हो तो मेरी अन्तिम प्रार्थना सुन लीजिये। यदि आपका यही विश्वास हो कि कुछ भी पराक्रम न करके चुप-चाप बैठे रहना ही अच्छा है—क्षमा से ही सारे सुख-साधन प्राप्त हो जायँगे—तो एक बात कीजिये। आप अपने इस धनुर्बाण की तरफ़ आँख उठाइये। जानते हैं, यह किसके धारण करने योग्य है? यह क्षमाशीलों के हाथ में रहने के लिए नहीं। राज्य-लक्ष्मी के स्वामी राजा ही के हाथ में धारण करने के लिए है। इसे आप अभी फेंक दीजिये। आज से आप सच्चे क्षमाशील तपस्वी बन कर और जटाजूट बढ़ा कर इस जङ्गल में निरन्तर अग्निहोत्र किया कीजिये।

"हाँ, मुझे एक बात और कहनी है। मेरे इस निर्भर्त्सना-पूर्ण उपालम्भ को सुन कर शायद मुझे आप अविवेकिनी समझें। शायद आप यह कहें कि 'बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष

अज्ञात-वास करने की प्रतिज्ञा तो अभी पूरी ही नहीं हुई। उसके पूर्ण हुए बिना पराक्रम करने और शत्रुओं से उनके दुष्कृत्यों का बदला लेने का तो अभी अवसर ही नहीं आ सकता। फिर मैं इतना अकाण्ड-ताण्डव क्यों कर रही हूँ ?' तो इस पर भी आप मेरी प्रार्थना सुन लीजिये। मेरा अभिप्राय है कि प्रतिज्ञा-पालन किया किसके साथ जाता है ? जो स्वयं प्रतिज्ञा-पालन करता हो—जो स्वयं सच्चा हो—उसके साथ न ? शत्रु तो प्रतिज्ञा-पालन नहीं कर रहे। वे तो बराबर छल-कपट करते ही जा रहे हैं। ऐसी दशा में आपके सदृश पराक्रमी पुरुष को प्रतिज्ञा-पालन की आन पर डटे रहना सर्वथा अनुचित है।

द्रौपदी की बातें सुन कर भीमसेन बहुत प्रसन्न हुए। उनको उसकी बातें बहुत ही गौरवपूर्ण और हितकारिणी मालूम हुईं। अतएव द्रौपदी के भाषण का अनुमोदन करना उन्होंने अपना कर्त्तव्य समझा। उन्होंने युक्ति-पूर्ण और प्रौढ़ वचनों में अपना कथन आरम्भ किया। वे धर्मराज युधिष्ठिर से बोले:—

"महाराज! प्रियतमा द्रौपदी ने बहुत ठीक कहा है। उसे सचमुच ही क्षत्रिय-कुल का बड़ा अभिमान है। अतएव उसे ऐसा कहना ही चाहिए था। जो कुछ उसने कहा, बिना विचार किये ही नहीं कहा। खूब सोच-विचार कर जैसी युक्ति-युक्त, जैसी सुन्दर और जैसी हितोपदेश-पूर्ण बातें उसने कहीं, वैसी वाचस्पति बृहस्पति से भी कहते [illegible] । मैं तो यही कहूँगा कि उसका कथन [illegible]

द्रौपदी [illegible] यही सुचित
होता [illegible] परिचित

"महाराज ! जिसकी यह इच्छा होती है कि मेरा अभ्युदय हो, वह यदि बुद्धिमान् है तो और ही तरह की नीति का अवलम्बन करेगा। यदि उसे यह मालूम हो जायगा कि शत्रु का उत्कर्ष, फिर चाहे वह कितना ही अधिक क्यों न हो, अन्त में अनर्थकारक ही होगा, तो वह उसका कुछ भी प्रतिकार न करके चुपचाप बैठा रहेगा। वह सोचेगा, इस उत्कर्ष के बाद जब शत्रु का आप ही आप अपकर्ष होने वाला है तो व्यर्थ परिश्रम करके उसे जीतने की क्या आवश्यकता है ? परन्तु यदि बुद्धिमान् मनुष्य को यह मालूम हो जायगा कि इस समय शत्रु की सम्पत्ति का नाश तो बड़े वेग से हो रहा है; परन्तु, कुछ दिनों के बाद, उसके उत्कर्ष की सम्भावना है, तो वह पल भर भी चुप न बैठेगा। वह तत्काल ही पराक्रमपूर्वक अपने शत्रु पर आक्रमण करके उसे अपदस्थ कर देगा। अतएव, महाराज ! शत्रु के वर्तमान उत्कर्ष अथवा अपकर्ष को आप न देखिए। इस समय उसके प्रतिकार अथवा उपेक्षा की आवश्यकता है या नहीं, इसका ज़रा भी विचार न कीजिए। आप शत्रु की भावी स्थिति पर विचार करके जो कुछ उचित हो कीजिए।

"आप शायद यह सोचते होंगे कि हम लोग बलहीन हैं और हमारा शत्रु बहुत बलवान् है। इस दशा में [illegible] सामना कैसे कर सकेंगे ? परन्तु भाई ! [illegible] बल है। बात यह है कि उत्साह से [illegible] जिसमें उत्साह [illegible] फिर [illegible] उत्तरोत्तर

अन्धसुत दुर्योधन ने कपट करके ही हम लोगों से हम
राज्य छीन लिया। यह जो कुछ हुआ सो हुआ; अब भी
वह खुल्लमखुल्ला हमारे साथ छल-कपट कर रहा है। ऐ
आदमी से अपने राज्य को फिर पाने की आशा तक करन
हमारी बहुत बड़ी भूल है।

"हाय-हाय! क्या हम लोगों में पशुओं की जैसी भी मन-
स्विता नहीं? देखिये, हरिण आदि जङ्गली पशुओं का राजा
सिंह भी मदोन्मत्त हाथियों को स्वयं मार कर अपनी उप-
जीविका करता है। दूसरे के मारे हुए शिकार को वह कभी
छूता तक नहीं। चाहिए भी यही। अपने तेज से और सब
लोगों को तेजोहीन करने वाला तेजस्वी पुरुष इस बात की
कभी स्वप्न में भी इच्छा नहीं रखता कि दूसरे की कृपा से उसे
सुख और ऐश्वर्य मिले। वह उन की प्राप्ति अपने ही भुज-बल
और अपने ही पराक्रम से करता है। अतएव महाराज, साम-
आदि उपायों की बात अपने हृदय से एकदम दूर कर दीजिए।
धनुर्बाण उठाइये और दुष्ट दुर्योधन से अपना राज्य छीन लेने
के लिए तैयार हो जाइये।

"महाराज, आपकी बुद्धि पर प्रमाद-जन्य अन्धकार का
परदा-सा पड़ गया है। उदासीनता ने आप की बुद्धि को
कुंठित-सा कर दिया है। आप अपनी बुद्धि के इस मोहरूपी
आवरण को तत्काल हटा दीजिये। अपना बल-विक्रम दिखाने
के लिए शीघ्र ही तैयार हो जाइये। शत्रु जो आनन्द से राज्य-
सुख का उपभोग कर रहे हैं—उनके सङ्कटों का जो एक वम
नाश-सा हो गया है—इस का एक मात्र कारण आपका अनु-
द्योग और आप का अनुत्साह है। इसे आप ध्रुवसत्य समझिये।

यदि आप कुछ भी उद्योग करते तो शत्रु सब तरफ़ से विपत्तियों के फन्दे में फँसे बिना न रहते। न मालूम कब उनका नाश हो गया होता।

"महाराज, आप इस शङ्का को अपने हृदय में एक क्षण के लिए भी स्थान न दीजिये कि युद्ध करने से आप को शत्रुओं से हार खानी पड़ेगी। मतवाले चार दिग्गजों और विस्तीर्ण चार समुद्रों के सदृश, पृथ्वी के कोने-कोने में विख्यात, इन्द्र के सदृश महा पराक्रमी, आपके हम चारों छोटे भाई आप के लिए प्राण देने को तैयार हैं। आप ही बताइये, शत्रुओं के पक्ष में क्या एक भी ऐसा वीर है, जो समर-भूमि में हमारा सामना कर सके? अतएव आप दुविधा को दूर करके अब निःशङ्क युद्ध की तैयारी कर दीजिये। मुझे विश्वास है कि इसका फल अच्छा ही होगा।"

युधिष्ठिर तो बहुत बड़े राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने देखा कि शत्रुओं के किये हुए अपकार का स्मरण करके भीमसेन के हृदय में विकार उत्पन्न हो गया है। अतएव वे क्रोध से उन्मत्त हो उठे हैं। यह सोच कर उन्होंने मतवाले हाथी के सदृश ही उन्हें धीरे-धीरे शान्त करना आरम्भ किया। उन्होंने मन में कहा कि 'युक्ति से भीमसेन की सान्त्वना करनी चाहिए। उन्हें फटकारने से काम न चलेगा।' वे

"तुम्हारे [illegible] भाई,
वाह! तुमने नीि[illegible] किया।
[illegible] पद का प्रयोग
[illegible] पर भी तुमने
[illegible] जितनी बातें
[illegible] इसके सिवा अपने

भाषण में तुमने पूर्वापर-सम्बन्ध का निर्वाह भी खूब ही किया। एक शब्द भी अप्रासङ्गिक नहीं आने दिया। तुमने यद्यपि एक ही विषय पर अपने विचार प्रकट किये, तथापि विषय एक होने पर भी कहीं भी पुनरुक्ति नहीं आने दी। तुम धन्य हो! मैं तो जैसे-जैसे तुम्हारे भाषण की योग्यता पर विचार करता हूँ वैसे ही वैसे मुझे उसमें नये-नये गुण दिखाई देते हैं। तुम्हारा भाषण साकाङ्क्ष, अर्थ-गौरव-युक्त और स्पष्ट ही नहीं, तुमने उसमें अपने बुद्धिबल से जिन युक्तियों का प्रतिपादन किया वे भी उत्तम हैं। तुम्हारा यह भाषण तुम्हारे क्षात्र-धर्म के सर्वथा ही योग्य है। जो लोग क्षात्र-धर्म्म के ऐसे कट्टर पक्षपाती नहीं, वे इस प्रकार का युक्तिपूर्ण और नीतिशास्त्र-संगत भाषण करने के लिए कभी निःशङ्क होकर तैयार नहीं हो सकते।

"सूर्यास्त होने पर सर्वत्र अन्धकार फैल जाता है। इस कारण न कोई लिख सकता है, न पढ़ सकता है, न कोई और ही काम कर सकता है। संसार के सब व्यापार प्रायः बन्द हो जाते हैं। ऐसे समय में दीपक जलने से सब चीजें फिर दिखाई देने लगती हैं और मनुष्यों के सारे काम फिर पूर्ववत् होने लगते हैं। इसी तरह अविवेक-रूपी अन्धकार से मनुष्य की बुद्धि जब आच्छादित हो जाती है, तब उसके लिए यह समझना बहुत ही कठिन हो जाता है कि कौन काम करने और कौन न करने योग्य है। ऐसे समय में, विवेकी पुरुषों के लिए सतत अभ्यास से निर्णय किये गये नीति-शास्त्र के वचन, दीपक का काम देते हैं। उन्हीं की सहायता से विवेकशील पुरुष यह जानने में समर्थ होते हैं कि कौन काम हमारे करने और कौन न करने योग्य है। अतएव नीति-शास्त्र का अभ्यास करके विवेकशील होना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है।

जिनकी यह इच्छा हो कि वे अपने शत्रुओं पर विजय पावें, उन्हें पहले क्रोध पर विजय प्राप्त करना चाहिए। जो सच्चे हैं, वे क्रोध को जीत कर, तब शत्रु को जीतने की चेष्टा करते हैं। वे इस बात का निश्चय पहले ही से कर लेते हैं कि कौनसा प्रयत्न करने से, कौन से उपाय के अवलम्बन से, हमें भविष्यत् में यथेष्ट फलसिद्धि होगी। यह करके तब वे तदनुकूल उपायों की योजना करते हैं। फलसिद्धि का निश्चय पहले न करके पराक्रम करने के लिए उतारू हो जाना सर्वथा अनुचित है।

"क्षत्रियों के लिए क्रोध को जीत लेना परम आवश्यक है। बिना क्रोध को जीते अभीष्ट कार्य कदापि सफल नहीं हो सकता। जो अपने अभ्युदय की हृदय से इच्छा रखता हो, उसे चाहिए कि वह क्रोध से उत्पन्न हुए अज्ञान को अपनी विचार-बुद्धि से दूर कर दे। बिना ऐसा किये उसका अभ्युदय नहीं हो सकता।

किसी-किसी का मत है कि जो दुर्बल है, उसी को क्रोध का त्याग करके युक्ति से अपना काम निकालना चाहिए। जो बलवान् है उसे क्रोध-त्याग की क्या आवश्यकता? क्रोध से उसकी कोई हानि नहीं हो सकती। क्योंकि उसे तो अपने शौर्य और पराक्रम ही से अभीष्ट फल की प्राप्ति हो जाती है। परन्तु यह मत ठीक नहीं। इस से मैं सहमत नहीं। जो लोग क्रोध से उत्पन्न हुए मनोहर मोह का नाश किये बिना ही, केवल अपने पराक्रम के भरोसे, कोई काम करते हैं, उन्हें कभी सफलता प्राप्त नहीं होगी। कृष्णपक्ष जिस तरह चन्द्रमा की सम्पूर्ण कलाओं का नाश कर डालता है, उसी तरह एक मात्र शौर्य के भरोसे कार्यारम्भ करनेवाला क्रोधी मनुष्य बुद्धि, धनशक्ति और

उसमें एक बहुत बड़ा गुण और भी है। वह यह कि उसका कभी नाश नहीं होता; उसकी सहायता से शत्रुओं का अवश्य नाश हो जाता है। इस दशा में तुम्हीं कहो, क्षमा से बढ़ कर कार्य्यसिद्धि में सहायता देने वाली और कौन-सी वस्तु संसार में है ?

"तुम शायद यह समझते होगे कि जब तक हम लोग क्षमा-क्षमा कहते हुए चुपचाप बैठे रहेंगे, तब तक दुर्योधन सब राजाओं को अपने अनुकूल कर लेगा। फिर उस से पार पाना असम्भव हो जायगा। परन्तु तुम्हारी यह शङ्का निर्मूल है। यादव कभी दुर्योधन के अनुकूल न होंगे। हम लोगों पर उन का निष्कपट स्नेह है। उनका यह स्नेह सर्वथा स्वाभाविक भी है। वे हमारे स्नेह-पाश में बँध-से गये हैं। वे ऐसे-वैसे नहीं, बड़े ही आत्माभिमानी हैं; उनके साथ हम लोग सदा से ही नम्रता का व्यवहार करते आये हैं। अतएव वे हमें छोड़ कर कभी दुर्योधन की अनुकूलता न करेंगे। हमारा उनका सख्य ही कुछ कुछ ऐसा है कि उसे वे त्रिकाल में भी तोड़ना न चाहेंगे। यद्यपि इस समय ऊपर से ऐसा मालूम होता है कि वे दुर्योधन ही के अनुकूल हैं, तथापि समय आने पर वे उसे छोड़ कर हमारी ही सहायता करेंगे। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। यादव ही नहीं, उनके बन्धु-बान्धव भी हमारी ही सहायता करेंगे। यादवों के मातृ-पितृ पक्ष के सम्बन्धी तथा उनके नये-पुराने मित्र भी यादवों ही का अनुसरण करेंगे। इन लोगों में से एक भी ऐसा नहीं, जो यादवों की बात का उल्लंघन करे। इस समय ये लोग जो दुर्योधन की अनुकूलता कर रहे हैं, उसका कारण है। ये लोग दुर्योधन को भुलावा दे रहे हैं। अपनी नम्रता और अनुकूलता से कभी तो ये ऊपरी तौर से यह दिखा रहे हैं कि

अहङ्कार से अभिभूत हो रहा है, जिसने कभी किसी काम का आरम्भ करके स्वयं उसे सफलता-पूर्वक नहीं समाप्त किया, वह कुछ दिन चाहे भले ही आनन्द से सम्पत्तियों का उपभोग करे, पर सदा नहीं कर सकता। विनय और शालीनता के कारण उसकी सम्पत्तियों का नाश कुछ ही समय तक रुक सकता है, अधिक समय तक नहीं, कारण उपस्थित होने पर वह अवश्य ही अहङ्कार के वशीभूत हो जाता है। फिर वह विनय और शील आदि को भूल जाता है। इस अवस्था को पहुँचने पर उसे अवश्य ही विपत्ति-ग्रस्त होना पड़ता है। दुर्जनों का राज-मद परिणाम में कभी सुखकारक नहीं होता।

"राज-मद अत्यन्त अनर्थकारी है। राजा के हृदय में मद और अहङ्कार की उत्पत्ति होने पर मूढ़ता उसे अवश्य ही आ घेरती है; और, मूढ़ मनुष्य को कार्य्य-अकार्य्य का कुछ भी ज्ञान नहीं रहता। अतएव मूढ़ता का आगमन होते ही मनुष्य न्याय्य मार्ग का उल्लंघन कर जाता है—वह अन्याय करने लगता है। और, अन्यायी राजा से प्रजा कभी सन्तुष्ट नहीं रहती। वह अवश्य ही उसकी प्रतिकूलता करने लगती है। प्रजा के प्रतिकूल होने पर मन्त्री लोग भी प्रतिकूल हो जाते हैं। अन्यायी राजा को कोई पसन्द नहीं करता; सभी उससे घृणा करते हैं। प्रजा-जनों और मन्त्रियों के विरोधी बन जाने पर, राजा चाहे जितना पराक्रमी क्यों न हो, उसका समूल नाश बहुत ही सहज हो जाता है। तीव्र वायु के झोंकों से जिस वृक्ष के पत्ते, डालियाँ और तना आदि सभी अवयव हिल जाते हैं—शिथिल हो जाते हैं—उसे मन्द वायु भी सहज ही में उखाड़ फेंकता है। यही हाल अहङ्कारी, मदोन्मत्त और अन्यायी राजा का होता है।

उसकी प्रजा और मन्त्रि-मण्डल के बिगड़ उठने पर वह निर्बल और सहायहीन हो जाता है। तब उसका जड़ से नाश करने में देर नहीं लगती। तब तो अस्त्र-बल और अल्प-साधन से युक्त भी शत्रु उसे, शिथिल हुए वृक्ष के सदृश ही, उखाड़ फेंकने में समर्थ होता है।

"हमारे शत्रु दुर्योधन का उत्कर्ष यद्यपि उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, तथापि उसकी उपेक्षा करने ही में हमारी भलाई है। नीति कहती है कि राज-मद से मत्त हुए शत्रु का उत्कर्ष चाहे जितना अधिक रहा हो, बुद्धिमान् मनुष्य को उससे भयभीत न होना चाहिए। दुर्विनीत शत्रु भले ही कितना बलवान् और पराक्रमी क्यों न हो, दुर्विनीतता के कारण उसका वह बल और वह पौरुष समय पर कुछ भी काम नहीं आता। भेद-भाव का प्रसङ्ग उपस्थित होने पर बहुत ही थोड़े उपायों से वह जीता जा सकता है। कारण यह है कि दुर्विनीत और मदमत्त पुरुष के पास सम्पदायें बहुत दिन तक ठहर हो नहीं सकतीं। अन्त में वे उसे स्वयं ही छोड़ जाती हैं। उनका पर्य्यवसान अनर्थकारी हुए बिना रहता ही नहीं।"

अपने शत्रु दुर्योधन के अभ्युदय का स्मरण करके क्षुब्ध हुए भीमसेन को युधिष्ठिर इस प्रकार नीति-शास्त्र-सम्बन्धी रहस्य समझा ही रहे थे कि महामुनि व्यास वहाँ अकस्मात् आते हुए दिखाई दिये।

प्रश्न

१ द्रौपदी के भाषण का सार क्या है?
२ भीम ने किस प्रकार द्रौपदी के कथन की पुष्टि की?
३ धर्मराज ने किस प्रकार उनके संशयों को निर्मूल किया?
४ इन भाषणों से तीनों का चरित्र चित्रण करो।

तमाखू

तमाखू के इस सार्वभौम निषेध का और उस निषेध के होते हुए भी उसकी सार्वभौम विजय का रहस्य क्या है? उसमें ऐसी कौनसी बुराई है, जिसके कारण लोग इस तरह उसकी निन्दा करते हैं? साथ ही उसमें ऐसी कौन-सी प्रबल शक्ति है, जिसकी सहायता से वह लोगों को अब भी बड़ी शीघ्रता से अपने वश में करती जाती है?

संक्षेप में इन दोनों प्रश्नों का उत्तर यह है कि तमाखू एक महा भयंकर विष है और उसकी सम्मोहन शक्ति उसका बल है।

संसार के तमाम बड़े-बड़े डाक्टर, वैद्य, रसायन-शास्त्री और वैज्ञानिक अब इस बात पर एक मत हो गये हैं, कि तमाखू संसार के अधिक से अधिक मारक विषों में से एक है। प्रूसिक ऐसिड को छोड़कर प्राणियों का प्राण इतनी जल्दी हरण करने की शक्ति किसी अन्य विष में नहीं है। तमाखू पौदों की एक जाति का (जिसे अँगरेज़ी में Volaceoe कहते) महा भयंकर विषैला पौदा है। संसार में इसकी कोई ५० जातियां हैं और सभी न्यूनाधिक परिणाम में विषैली होती हैं।

यह भयंकर विष, जिसके कारण तमाखू को यह प्रबल सम्मोहन शक्ति प्राप्त है, (Nicotic C. १० H. १४ N. २) निकोटाइन कहलाता है। निकोटाइन एक घन द्रव है। तमाखू की सूखी पत्तियों का गाढ़ा अर्क निकालने से यह प्राप्त हो सकता है। तमाखू में यह दो से लगा कर आठ प्रतिशत तक की मात्रा में पाया जाता है। ज्यों-ज्यों तमाखू पुरानी होती जाती है, उसमें इस विष की मात्रा बढ़ती जाती है। वर्जिनिया की उत्कृष्ट

समझी जाने वाली तमाखू में यह प्रतिशत छः
परिमाण में होता है। डॉ० फेलॉग का कथन है कि
(आधा सेर) तमाखू में ३८० ग्रेन निकोटाइन वि
यह इतना भयंकर होता है कि एक ग्रेन का दस
कुत्ते को ३ मिनट में मार सकता है। एक शख्स
३० सैकिन्ड के अन्दर मर गया था। आधा सेर
इतना विष होता है, जो ३०० आदमियों के प्राण ले स
एक मामूली सिगरेट में जितनी तमाखू होती है उससे
दो आदमियों की जान ली जा सकती है, भयंकर से
विषधर साँप तमाखू के विष से इस तरह मर गये, म
पर बिजली गिर पड़ी हो !

तमाखू का विष इतना भयंकर और तेज़ होता है कि
की पत्तियों के बाहरी प्रयोग से भी मनुष्य के शरीर पर
परिणाम देखे गये हैं। आप एक चिलम तमाखू को पेट पर
र देखिए कि क्या-क्या परिणाम होता है। थोड़ी ही दे
आपकी क्षय होने जैसी स्थिति हो जायगी। युद्ध से डरने
ाही कई बार तमाखू को पेट पर या बगल में बाँध
ारी को बुलाते हैं और लड़ाई से बच जाने की कोशिश कर
हे गये हैं।

डॉ० फूट अपने होम एनसायक्लोपीडिया में लिखते हैं—
टाइन की एक बूँद से एक मामूली कुत्ता और दो
से बलवान से बलवान कुत्ता मर जाता है। छोटे-छोटे
ा तो उसकी ट्यूब की हवा से ही मर कर गिर पड़ते हैं।
तमाखू की पत्तियों को पानी में उबालने से एक Empy-
reumatic नामक तेल निकलता है। इसका ...

"मैं सदा इस टेव को जंगली, हानिकारक और गन्दी मानता आया हूँ। अब तक मैं यह न समझ पाया कि सिगरेट पीने का इतना ज़बर्दस्त शौक़ दुनियाँ को क्यों है ? रेल के जिस डिब्बे में बहुतेरी बीड़ियाँ फूंकी जाती हों, वहाँ बैठना मेरे लिए मुश्किल हो जाता है और उसके धुंए से दम घुटने लगता है।"

'दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह' नामक पुस्तक में महात्माजी एक पुराने दमे के बीमार के विषय में लिखते हैं कि जिस समय यह बूढ़ा, जिसका नाम लुटावन था, मेरे पास आया, तब उसकी उम्र ७० वर्ष से ऊपर ही होगी । उसे बड़ी पुरानी दमे और खांसी की व्याधि थी। अनेक वैद्यों के काथ-पुड़ियों और कई डाक्टरों की बोतलों को वह पचा चुका था । मैंने उससे कहा कि यदि तुम मेरी सारी शर्तों को स्वीकार करो और यहीं पर रहो, तो मैं अपने उपचारों का प्रयोग तुम पर कर सकूँगा। उस समय मुझे अपने इन उपचारों पर असीम विश्वास था। उसने मेरी शर्तों को स्वीकार किया । लुटावन को तमाखू का बहुत व्यसन था। मेरी शर्तों में तमाखू छोड़ने की भी एक शर्त थी। मेरे बताये उपचार तथा धूप में दिये क्यूनी बाथ से उसे लाभ हुआ, पर रात को उसे खाँसी बहुत सताती । मुझे तमाखू पर शक हुआ । मैंने उससे पूछा, पर उसने कहा कि मैं नहीं पीता। इसी प्रकार कितने ही दिन और बीत गये परन्तु लुटावन की खाँसी में फ़र्क न पड़ा । इसलिए मैंने लुटावन पर छिप कर दृष्टि रखने का निश्चय किया । हम सब लोग पृथ्वी पर ही सोते थे, इसलिए सर्पादि के भय के कारण मि० कैलनबेक ने मुझे बिजली की एक बत्ती दे रक्खी थी। मैं इस बत्ती को लिए दरवाज़े से बाहर बरामदे में बिस्तर

लगाये हुए था। और द्वार के निकट ही सुग्रावन लेटा हुआ था। लगभग आधी रात के सुग्रावन को खांसी आई। दिया-सलाई सुलगा कर उसने बीड़ी पीना शुरू किया। मैं चुपचाप उसके बिस्तर पर जा कर खड़ा हो गया और बिजली की बत्ती का बटन दबाया। सुग्रावन घबड़ाया। वह समझ गया। बीड़ी बुझा कर वह उठ खड़ा हुआ और मेरे पैर पकड़ कर बोला:—

"मैं ने बड़ा गुनाह किया! अब मैं कभी तमाखू नहीं पीऊँगा। आप को मैंने धोखा दिया, आप मुझे क्षमा करें।' यह कह कर वह गिड़गिड़ाने लगा। मैंने उसे आश्वासन देते हुए समझाया कि बीड़ी छोड़ने में उस का हित है। मेरे बताये हुए उपाय के अनुसार तुम्हारी खाँसी मिट जानी चाहिए थी, परन्तु वह न मिटी, इसीलिए मुझे शक हुआ। सुग्रावन की बीड़ी छुटी और उसके दो तीन दिन बाद ही उसकी खाँसी और दमा कम हो गया। इसके बाद एक मास में सुग्रावन पूर्ण नीरोगी हो गया।"

अब तमाखू का विष इतना मारक है तो स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि आदमी मर क्यों नहीं जाता? वह इतने भीषण विषयों का प्रयोग होने पर भी जी कैसे सकता है? इसका एकमात्र उत्तर यही है कि मानव-शरीर एक असंगठित राष्ट्र के समान दुर्बल नहीं है। वह सहसा अपने किले को शत्रु के हाथों में सौंपने के लिए तैयार नहीं हो सकता। मनुष्य की ईश्वर-दत्त प्राणशक्ति और विष की मारक-शक्ति में भीषण युद्ध छिड़ जाता है। जब तक वह विष मनुष्य के मस्तिष्क पर विजय प्राप्त नहीं कर लेता, शरीर के रक्षक सिपाही बराबर युद्ध करते रहते हैं। मस्तिष्क के आक्रान्त होने पर भी युद्ध तो जारी रहता है,

परन्तु तब प्राणशक्ति के विजय की इतनी सम्भावना नहीं रह जाती। अन्त में परमात्मा का बनाया हुआ वह राष्ट्र इतना दीन और निर्बल नहीं है, जो इस थोड़े से आक्रमण से शत्रु के हाथों में चला जाय। हाँ एक बात ज़रूरी है। एक निर्व्यसनी मनुष्य और व्यसनाधीन पामर के शरीर में वही अन्तर होगा, जो एक शान्तिशील समृद्ध राष्ट्र में और ऐसे राष्ट्र में होता है जहाँ शत्रु बराबर आक्रमण करते रहते हैं; जिसका सारा बल, सारी सम्पत्ति, सारी बुद्धि अपनी रक्षा करने ही में नष्ट हो जाती है। एक व्यसनी और निर्व्यसनी पुरुष में वही अन्तर होगा जो भारत और अमेरिका के बीच में है, जो चीन और जापान के बीच में है, जो मिश्र और तुर्किस्तान के बीच में है, जो अफ़ग़ानिस्तान और निज़ाम के राज्य के बीच में हैं। व्यसनों से अपने आपको छुड़ाते ही दुर्बल से दुर्बल मनुष्य भी उसी तरह बात की बात में बलवान और समृद्ध हो सकता है, जैसे तुर्किस्तान।

हमने देखा कि तमाखू के विषैले परमाणु फेंफड़े और हृदय तक पहुँच कर मनुष्य के रक्त को भी अशुद्ध, रोगी और निर्बल बना-देते हैं। और अन्त में मानव-शरीर में रक्त ही तो सब कुछ है। रक्त प्राणियों की जीवन-शक्ति का सजीव प्रवाह है। यही शरीर के कोने-कोने तक पहुँच कर हमारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग को नवजीवन अर्पित करता है, उनकी थकावट को दूर करता है और जीर्ण भागों की मरम्मत करता है। पर निर्बल और रुग्ण खून प्राणियों के अङ्गों को क्या जीवन देगा? शरीर के सैनिक परमाणु भी असंगठित और निर्बल हो जाते हैं। ऐसी अवस्था में तनिक-सा मौक़ा मिलते ही हर कोई रोग उस शरीर पर अपना अधिकार कर लेता

इसलिए इस बात का यहाँ पर विस्तृत वर्णन करना व्यर्थ है कि तमाखू से मनुष्य को कौन-कौन से रोग होते हैं। मादक चीज़ों के सेवन करने वाले सभी लोग रोगों के बहुत जल्दी शिकार होते हैं, बहुत दिन तक बीमार रहते हैं और अधिक संख्या में मरते हैं।

तमाखू और क्षय

क्षय फेंफड़ों का रोग है, अतः इस का सब से गहरा सम्बन्ध वायु की स्वच्छता से है। दूषित वायु को अन्दर लेने से क्षय होता है। स्वयं हम अपने श्वासोच्छ्वास द्वारा जो वायु छोड़ते हैं, वही इतनी विषैली होती है कि उस का पुनः ग्रहण करना बड़ा भयप्रद है। इसीलिए मुँह ढांक कर सोना आरोग्य शास्त्र के अनुसार मना है। अगर ऐसा है तो निकोटाइन जैसे भयंकर विष के परमाणुओं को धारण करने वाले धुँए को प्रतिदिन घण्टों पीते रहना तो स्पष्ट ही महान भयंकर है। उस से अगर फेंफड़ा सड़ जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

तमाखू और हृद्रोग

क्षय और हृद्रोग तमाखू की विशेष देन है। क्योंकि इसका विष पहले इन्हीं दो अङ्गों पर आक्रमण करता है। हम ऊपर पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार हृदय की आवर्णात्मक त्वचा शुष्क हो जाती है और हृदय की गति को विषम बना देती है। यही हृदय का रोग है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तमाखू सेवक की नाड़ी की गति को देखने से ही मिल सकता है।

उदर रोग

रक्त के अशुद्ध होने ही उसकी गर्मी और इसीलिए आंतों में, आवश्यक रसों को आकर्षण करने की जो शक्ति होती है,

यह भी स्वभावतः घट जाती है । इसी का दूसरा नाम है श्राचन। पेट में अर्क अन्न के पड़े रहने से और भी अनेक प्रकार के उदर-रोग होते हैं।

नेत्र रोग

तमाखू यों तो अपने भक्तों के सारे शरीर में एक प्रकार की शून्यता उत्पन्न कर देती है, परन्तु नेत्रों पर उसका सब से अधिक असर होता है। तमाखू के भक्तों की दृष्टि बड़ी निर्बल हो जाती है। इसका प्रमाण आँखों के तमाम वैद्य-डाक्टर दे सकते हैं। आयर्लैण्ड के लोग तमाखू के कट्टर भक्त हैं। उन में यह रोग बहुतायत से पाया जाता है। जर्मनी और बेल्जियम में भी इसकी अधिकता है। तमाखू के भक्तों में रँगों के लिए अन्धापन आ जाता है। वे भिन्न-भिन्न रँगों को ठीक तरह नहीं पहचान सकते।

तमाखू और चरित्र-हीनता

इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं कि तमाखू अनेक भारी-भारी पापों की जननी है। इसका प्रवेश होते ही पापों की सेना आती है। तमाखू के सेवन से मनुष्य का चरित्र शिथिल हो जाता है। शराबखोरी और व्यभिचार की ओर वह बहुत जल्दी झुक जाता है। सत्यासत्य, नीति-अनीति का विवेक न रहना तो तमाखू-भक्त के लिए एक बिल्कुल मामूली-सी बात है।

तमाखू केवल उसके भक्त की ही जान नहीं लेती, वह उसकी सन्तति पर भी हाथ साफ़ करती है। पिता के तमाखू-रोग पुत्र को विरासत में मिलते हैं।

नपुंसकता

डॉ० फूट लिखते हैं कि "मैं ने देखा है कि तमाखू नपुंसकता कारणों में से एक मुख्य है। और जब मेरे पास ऐसे लो इलाज के लिए आते हैं तो मैं उनसे कहता हूँ कि तुम्हें दो में से एक बात पसन्द करनी होगी। विषय-सुख या तमाखू। तमाखू से प्यार हो तो विषय-सुख से निराश हो जाओ। वास्तव में तमाखू से शरीर की सारी नसें ढीली पड़ जाती हैं। पर कभी-कभी सारे शरीर पर इसका दुष्परिणाम देर से प्रकट होता है। सब से पहले उसका प्रभाव शरीर के सब से अधिक निर्बल अंग पर ही होता है। और चूँकि पुरुष अपनी जननेन्द्रिय का बहुत दुरुपयोग करता है, तमाखू का विष इस दुर्बल और दलित अंग को सब से पहले धर दबाता है।

पागलपन

तमाखू का धुँआ गैस के रूप में सीधा मस्तिष्क को पहुँच जाता है और वहाँ के ज्ञान-केन्द्रों को सुन्न कर देता है। यह अभ्यास बढ़ जाने पर मनुष्य बहुत जल्दी पागल भी हो जाता है। संसार के पागलों की जाँच करने पर तमाखू पीनेवाले निःसन्देह अधिक पाये जाते हैं।

संसार के तमाम गण्यमान्य डॉक्टरों और वैद्यों ने एवं धार्मिक नेताओं ने तमाखू की निन्दा की है; और उससे समाज को बचाने की कोशिश की है। उनमें से कुछ मुख्य-मुख्य रायें इस प्रकार हैं:—

तमालं भक्षितं येन सगच्छेन्नरकार्णवे ॥—ब्रह्मपुराण
धूम्रपानरतं विप्रं दानं कुर्वन्ति ये नराः।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः ॥ पद्मपुराण

डॉ० एडवर्ड्स आदि—"तमाखू का विष दाँतों को हानि पहुँचाता है।"

डॉ० कैलन—"हमने जितने अजीर्ण के रोगी देखे थे सब तमाखू का सेवन करने वाले थे।"

डॉ० हॉसेक—"तमाखू मंदाग्नि का मुख्य कारण है।"

डॉ० रगलेस्टर—"तमाखू से पाचन-यंत्रों की शुद्ध रक्त उत्पन्न करने की शक्ति कम हो कर सब प्रकार के अजीर्ण संबंधी रोग हो जाते हैं।"

प्रश्न

(१) तमाखू पीने से क्या हानियाँ होती हैं और क्यों होती है?

(२) डाक्टर लोग तमाखू के अन्दर किस विष को बतलाते हैं और उस विष का मनुष्य के शरीर पर क्या क्या प्रभाव पड़ता है?

(३) तमाखू के विरुद्ध कुछ बड़े-बड़े आदमियों के विचार प्रकट करो।

शिवाजी के विषय में विदेशियों का मत।

शिवाजी के विषय में जिन्हें सच्चा ज्ञान नहीं, वे इस महापुरुष को 'डाकू, बाग़ी, लुटेरा, चोर' इत्यादि नामों से याद करते हैं। यह रीति अभी तक प्रचलित है। यह हम अच्छी तरह जानते हैं कि कुछ पढ़े-लिखे हमारे हिन्दुस्थानी भाई भी शिवाजी को यही उपाधियाँ दिया करते हैं। इसका कारण केवल अज्ञान है। ऊपर के रँग-रूप से साधारण लोग किसी वस्तु का मूल्य निश्चय किया करते हैं और सारी अँगरेज़ी पुस्तकों में भी यही बात पढ़नी पड़ती है। इस कारण इन लोगों का ऐसा मत हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। परन्तु इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि जिस किसी पुरुष में कुछ भी महान गुण हैं, उसके विषय में उसके शत्रु भी—गाली देते समय भी—अनिच्छापूर्वक अनजाने ही उसकी कुछ प्रशंसा भी कर जाते हैं। जब हम ऐसा देखें तो हमें तुरन्त समझ लेना चाहिए कि इस पुरुष में ऐसे कई महान गुण अवश्य थे, जिनके कारण उसके शत्रुओं को भी उसकी प्रशंसा करने के लिए बाध्य होना पड़ा। अब हम पाठकों को यही दिखलाना चाहते हैं कि शिवाजी पर जिन-जिन लोगों ने कीचड़ फेंकने का प्रयत्न किया है, उन्होंने उस कीचड़ के साथ अनजान में कुछ हीरे और मोती भी अपनी जेब से निकाल कर फेंक दिये हैं।

ग्रौंवेन साहब ने अपने ग्रन्थ में शिवाजी के विषय में बहुत वर्णन किया है, परन्तु सहृदयता न होने के कारण शिवाजी के राजनीतिक कर्तव्य की मीमांसा आप की समझ में न आई और पहले ही से शिवाजी के विषय में उनके विचार

बिगड़े हुए होने के कारण वे केवल आश्चर्य चकित हो कर रह गये। आप लिखते हैं—"धींगाधींगी और अव्यवस्था को दूर कर के उस की जगह नियमित व्यवस्था स्थापित करना सचमुच बड़े कुशल पुरुष का काम है। प्रथम तो ऐसा जान पड़ता है कि शिवाजी ने इस स्थिति से भी बड़ा काम लिया। प्रचलित धींगाधींगी और अव्यवस्था से लाभ उठा कर उसने अपना उद्देश्य सिद्ध कर लिया और इन साधनों का प्रवाह अपने अधिकार में रख कर इष्ट-सिद्धि की ओर खूब ज़ोर से बहने दिया! अनियन्त्रित शासनरूपी महानदी के दरवाजे, उसने खोल दिये और लूट और सैनिक-स्वेच्छाचार का प्रवाह उसके हृदय में उमड़ आया। परन्तु उस प्रवाह में वह स्वयं न तो डूबा और न घबराया ही। उलटा, इस स्वेच्छाचारी और सर्वनाशकारी प्रवाह की सहायता से राज्यव्यवस्था और मर्यादित राष्ट्रीय स्वतन्त्रता उसने उत्पन्न की। महाराष्ट्रीय वीरों में भरी हुई महत्वाकांक्षा-रूपी अग्नि को उसने अपने उत्साह-रूपी वायु से प्रदीप्त किया; परन्तु स्वयं उसमें जल जाने का अथवा इतनी लूट और लापरवाही से मिले हुए राज्य के नष्ट होने का उसे कभी भय न हुआ। लूट और बेईमानी से उसका उत्कर्ष हुआ, तथापि उसके साथ कभी किसी ने विश्वासघात नहीं किया। विप्लव करना उसका और उसके लोगों का जीवनोद्देश्य था; पर उसके नियम बड़े कड़े थे। उनका उल्लंघन किसी ने नहीं किया और कभी यदि ऐसा हुआ भी तो अपराधी अवश्य दण्ड पाता था। सारांश यह कि शिवाजी एक भारी तूफ़ान पर चढ़ कर उस तूफ़ान को वश में रखने वाला विलक्षण पुरुष था। शिवाजी का चरित्र पढ़ने से ऐसी विलक्षण विरोधात्मक बातें देख पड़ती हैं, परन्तु उसने जो संस्थायें

निर्माण की, उनका अवलोकन करने से यह विरोध दूर हो जाता है।"

कहिये पाठक, क्या आप को इस कीचड़ में हीरे और मोती नहीं मिले? औरेन साहब गाली देने के बदले प्रशंसा कर रहे हैं। यह बात स्वतः सिद्ध है कि शिवाजी के राज्य में अनेक जाति के मुसलमान और हिन्दू थे, पर किसी ने इस महा पुरुष के साथ विश्वासघात न किया! फिर लूट-मार करना और उसकी सहायता से राज्य प्राप्त करना; अग्नि प्रदीप्त तो हो जाय, पर न उसमें वह जले और न मकान ही नष्ट हो!! तूफ़ान को अपने आप बुलावे, पर उसे बिलकुल पालतू बच्चा बना ले!!! क्या ही विलक्षण और विरोधात्मक बातें हैं!!! यही शिवाजी की योग्यता है!!!

बर्नियर नामक फ्रेंच यात्री ने हिन्दुस्थान में जो यात्रा की थी, उसका इतिहास लिखा है। उसने भी शिवाजी का इस प्रकार उल्लेख किया है:—

"शिवाजी नामक एक शूर और साहसी पुरुष बीजापुर के राज्य में गड़बड़ मचाता था। वह सदा सावधान, साहसी और अपनी रक्षा के विषय में बड़ा उदासीन रहता था। मुग़ल सरदार यशवन्तसिंह से अनबन होने के कारण उसने शाइस्ताखाँ पर चढ़ाई की और सूरत नगर की अपार सम्पत्ति लूट ले गया"।

इस समय की एक मज़ेदार बात भी बर्नियर ने यों लिखी है— "सूरत में रे० फादर अंब्रोज नामक एक पादड़ी थे। उनका शिवाजी ने बहुत सम्मान किया। शिवाजी कहा करते थे कि ये फिरंगी पादड़ी बहुत सज्जन होते हैं। इसलिए उन्हें तंग न करना चाहिए। इसी प्रकार यहाँ डिलेल नामक एक डच व्यापारी रहता था।

वह बड़ा दानशील गिना जाता था । इसलिए शिवाजी ने उसे भी कोई कष्ट न दिया। सूरत में एक यहूदी व्यापारी रहता था। बादशाह के पास बेचने को ले जाने के लिए उसने अनेक अमूल्य रत्न इकट्ठा किये थे। इसकी ख़बर शिवाजी को मिली। उसकी गर्दन पर तीन बार तलवार रख कर सिर काट देने का डर दिखलाया गया, तब भी उस पश्चिमी मारवाड़ी ने अपनी दौलत नहीं दिखलायी। बर्नियर के लिखने से ये दो-एक बातें मालूम होती हैं। यहूदी व्यापारियों के पास द्रव्य है, यह समाचार मिलने पर भी शिवाजी ने उन्हें बिना मारे छोड़ दिया। स्वतन्त्रता के हेतु शिवाजी प्रयत्न कर रहे थे, उसकी सिद्धि के लिए धमकी के सिवा और किसी कठोर उपाय का अवलम्बन उन्होंने नहीं किया । इसी प्रकार उदार और परोपकारी लोगों को कभी उनके द्वारा कोई कष्ट नहीं मिलता था और वह सदा उनका सम्मान किया करते थे।"

एक दूसरे फ्रेंच यात्री ट्रेवर्नियर साहब लिखते हैं—"शाहजी के विद्रोह के कारण बीजापुर के राज्य में बड़ी गड़बड़ी मच गई। बुरा बर्ताव करने के कारण बादशाह ने शाहजी को बन्दी रक्खा, और वह मरते दम तक बन्दी-गृह में रहा। इस बात से उसके पुत्र के हृदय को चोट पहुँची। शिवाजी उदार और सहृद था। इस कारण उसके अनेक अनुयायी हो गये थे। उसे बहुत से पैदल सवार मिल गये और थोड़े ही काल में उसके पास बड़ी भारी सेना हो गई। इस अवधि में बीजापुर का राजा मर गया। उसके कोई सन्तान न थी। अब शिवाजी की बन आई और दक्षिण किनारे का बहुत-सा प्रदेश उसे मिल गया। वह फ़ौज को अच्छा वेतन दिया करता था। इस कारण वे लोग

भक्तिपूर्वक नौकरी करते थे।" इतिहास का तो आपने मानो ख़ून ही कर डाला है! उड़ती-उड़ती बातें जो आपको मालूम हुई, उन्हीं को लेकर आपने अपना मत बना लिया। पर स्मरण रखने की बात है कि इन गप्पों के साथ शिवाजी के दो-चार गुण भी, आपके कानों में पड़े थे। इससे अधिक प्रमाण-पत्र और क्या चाहिए?

क्योर नामक एक फ्रेंच प्रवासी सन् १६६८ से १६७३ ई० तक हिन्दुस्तान में ही थे। आपने शिवजी के विषय में बड़ी विश्वस्त बातें प्रकाशित की हैं और बड़े ही आनन्दपूर्वक आप उनकी प्रशंसा करते हैं। आपने जूलियस सीज़र * और गस्टेव्हस श्रडाल्फस † से शिवाजी की तुलना की है और कहा है कि वह सर्वगुणसम्पन्न योद्धा चक्रवर्ती राजा था।

बीजापुर के मुसलमानी इतिहास में शिवाजी के विषय में लिखा है:—"शिवाजी के समान चपल, साहसी, चालाक, कुशल ठग, कभी किसी ने न सुना न देखा होगा। हम यही कह सकते हैं कि वह बड़ा पराक्रमी, शूर और विचारशील था। नाना प्रकार की ठग-विद्या और बहाने शिवाजी में ठूँस-ठूँस कर भरे थे। वह बड़ा साहसी था और लोगों की जान लेने में वह इतना प्रवीण था कि अपना सानी नहीं रखता था। शाहजी के जीते जी ही उसने इन कार्यों में कीर्ति प्राप्त कर ली थी। वह अपने बाहुबल और बुद्धिबलसे बड़े-बड़े राज्य नष्ट कर चुका था,

* रोम का बड़ा प्रसिद्ध योद्धा, जिसने वहाँ की स्थिति ठीक न देख कर रोम के शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली थी।

† स्वीडन का प्रसिद्ध सेनापति और राजा।

और बड़े-बड़े अच्छे-अच्छे स्थानों और घरों को लूट कर समूल नष्ट कर डालता था। दिल्लीपति और बीजापुर में वैर होने का कारण यही था। उसका भाग्य इतना बलवान् था कि इन दोनों के बीच में रह कर दोनों को एकसा कष्ट दिया करता और इन दोनों का सर्वनाश ही करने का उसने सङ्कल्प कर लिया था। दोनों बादशाह उसकी जड़ उखाड़ने का सदा उद्योग करते, पर उनकी कुछ न चली। शिवाजी किसी काम में शायद ही असफल हुआ हो। इस प्रकार अपने भाग्य के ज़ोर से पैंतीस वर्ष उद्योग करता रहा और बहुत मुल्क ले लेने पर मराठी राज्य की नींव डाल कर हिज़री सन् १०९१ (ई० सन् १६८०) में मरा और दिल्ली और बीजापुर के बादशाह उसके उपद्रव से मुक्त हुए। उसके बाद उसका दुराचारी पुत्र सम्भाजी अपने पिता की गद्दी पर बैठा। यह भी अपने पिता की रीति के अनुसार चल कर तेजस्वी होने लगा।" ध्यान देने की बात है कि ये शिवाजी के ख़ास शत्रुओं के विचार हैं।

तारीख १२ अगस्त १८९५ के 'जगद्धितेच्छु' ने लिखा है कि मुसलमानों के विषय में शिवाजी के मन में वैर-भाव नहीं था। इसके समर्थन में ख़ाफीख़ाँ के लेख से यह अवतरण दिया है:— "शिवाजी ने मसजिदों को नुक़सान नहीं पहुँचाया। यदि उसके हाथ कहीं क़ुरान की प्रति लग जाती तो वह उसका सम्मान कर के अपने आदमियों को, जो मुसलमान होते, दे दिया करता था।" सोचिये कि ख़ाफीख़ाँ कट्टर मुसलमान था और हिन्दुओं को कुत्ते, दुष्ट, पाजी इत्यादि विशेषणों से भूषित किया करता था। ऐसे पुरुष के ये वाक्य शिवाजी के विषय में हैं। इससे जान सकते हैं कि मुसलमान लोग शिवाजी के विषय में क्या

विचार रखते थे। मुसलमानों से केवल पर-धर्मी होने के कारण शिवाजी द्वेष करना उचित नहीं समझते थे। स्वधर्म स्थापित करने के समय परधर्म के उच्छेदन करने का उनका कभी उद्देश्य नहीं रहा। वे सबको समान भाव से देखते थे। इसलिए शिवाजी को सब मुसलमानों का शत्रु कहना यथार्थ नहीं है। खाफ़ीख़ाँ आगे लिखता है—"अपने राज्य के लोगों का सम्मान बनाये रखने के लिए वह सदा प्रयत्न करता रहता था। ग़दर और लूट से लोगों को कुछ कष्ट अवश्य होते थे; परन्तु इससे कोई बुरा काम उसने नहीं किया। जो मुसलमानों की स्त्रियाँ अथवा लड़के उसके हाथ में पड़ जाते, उनकी इज्ज़त में कभी कुछ कमी न होने देता था। इस बात में उसके नियम बड़े कड़े थे। जो नियम विरुद्ध काम करते; वे कठिन दण्ड पाते थे।" लीजिए, यह तो खाफ़ीख़ाँ ने मानो एल० एल० डी० का डिप्लोमा ही शिवाजी को दे दिया है।

पाठक शायद इन्हीं बातों में भूल गये होंगे, अस्तु। खाफ़ीख़ाँ से बढ़कर कोई और क्या कह सकता है? पर प्रसिद्ध दिल्लीपति कट्टर इस्लाम-धर्मी औरङ्गज़ेब की भी बातें सुन लीजिए। आप लिखते हैं—"शिवाजी बड़ा भारी योद्धा था। हिन्दुस्तान के प्राचीन राज्य के नष्ट करने का मैं सतत उद्योग कर रहा था। उस समय नया राज्य स्थापित करने का महत्वकार्य शिवाजी के सिवा किसी दूसरे से न बन पड़ा। उन्नीस वर्ष से मेरी सेना उसके साथ लड़ रही है। तब भी उसके राज्य का नित्य उत्कर्ष ही हो रहा है।" उस पहाड़ के चूहे को ऐसी बड़ी पदवी उसी के शत्रु ने प्रदान की है!

इससे अधिक शिवाजी के सम्बन्ध में अन्य लोगों के मत उद्धृत करने की हम आवश्यकता नहीं समझते।

प्रश्न

(१) शिवाजी में वह कौन से गुण थे, जो विदेशियों और विधर्मियों से भी उनकी प्रशंसा करा देते हैं?

(२) "शिवाजी का चरित्र पढ़ने से ऐसी विलक्षण विरोधात्मक बातें देख पड़ती हैं।" कैसी? और यह विरोध कैसे दूर होता है?

दण्डदेव का आत्मनिवेदन।

हमारा नाम दण्डदेव है; पर हमारे जन्मदाता का कुछ भी पता नहीं। कोई कहता है कि हमारे पिता का नाम वंश या बाँस है। कोई कहता है नहीं; हमारे पूज्यपाद पितृ महाशय का नाम काष्ठ है। इसमें भी किसी-किसी का मतभेद है क्योंकि कुछ लोगों का अनुमान है कि हमारे बाप का नाम बेंत है। इसी से हम कहते हैं कि हमारे जन्मदाता का नाम निश्चय-पूर्वक कोई नहीं बता सकता। हम भी नहीं बतला सकते। सब के गर्भधारिणी माता होती है; हमारे यह भी नहीं। हम तो ज़मीनोड़ हैं। यदि माता होती तो उससे पिता का नाम पूछ कर आप पर अवश्य ही प्रकट कर देते। पर क्या करें, मजबूरी है। न बाप न माँ। हम सिर्फ़ अपना ही नाम बता सकते हैं।

हम राज-राजेश्वर के हाथ से लेकर दीन दुर्बल भिखारी तक के हाथ में विराजमान रहते हैं। जरा-जीर्णों के तो एक अवलम्ब हमीं हैं। हम इतने समदर्शी हैं कि हम में भेद-भाव ज़रा भी नहीं। धार्मिक-अधार्मिक, साधु-असाधु, काले-गोरे

सभी का पाणिस्पर्श हम करते हैं। यों तो हम सभी जगह रहते हैं, परन्तु अदालतों और स्कूलों में तो हमारी ही तूती बोलती है यहाँ हमारा अनवरत आदर होता है।

संसार में अवतार लेने का हमारा उद्देश्य दुष्ट मनुष्यों और दुर्वृत्त बालकों का शासन करना है। यदि हम अवतार न लेते तो ये लोग उच्छृङ्खल होकर महीमण्डल में सर्वत्र अराजकता उत्पन्न कर देते, दुष्ट हमें बुरा बनाते हैं, हमारी निन्दा करते हैं, हम पर झूठे-झूठे आक्षेप करते हैं। परन्तु हम उनकी कटूक्तियों और अभिशापों की ज़रा भी परवाह नहीं करते। बात यह है कि उनकी उन्नति के पथ-प्रदर्शक हमीं हैं। यदि हमीं उनसे रूठ जाँय तो ये लोग दिन दहाड़े मार्ग-भ्रष्ट हुए बिना न रहें।

विलायत के प्रसिद्ध पंडित जानसन साहब को आप शायद जानते होंगे। ये वही महाशय हैं, जिन्होंने एक बहुत बड़ा कोष अँगरेज़ी में लिखा है और विलायती कवियों के जीवन-चरित्र बड़ी-बड़ी तीन जिल्दों में भर कर, चरित रूपिणी त्रिपथगा प्रवाहित की है। एक बार यही जानसन साहब कुछ भद्र महिलाओं का मधुर और मनोहर व्यवहार देख कर बड़े प्रसन्न हुए। इस सुन्दर व्यवहार की उत्पत्ति का कारण खोजने पर उन्हें मालूम हुआ कि इन महिलाओं ने अपनी-अपनी माताओं के कठिन शासन की कृपा ही से ऐसा सद्रोचित व्यवहार सीखा है। इस पर उनके मुँह से सहसा निकल पड़ा:—

"Rod! I will honour thee
For this thy duty."

अर्थात् 'हे दण्ड, तेरे इस कर्त्तव्य-पालन का मैं अत्यधिक आदर करता हूँ।' जानसन साहब की इस उक्ति का मूल्य आप

कम न समझिये। सचमुच ही हम बहुत बड़े सम्मान के पात्र हैं; क्योंकि हमी तुम लोगों के—मानव-जाति के—भाग्य-विधाता और नियन्ता हैं।

संसार की सृष्टि करते समय परमेश्वर को मानव-हृदय में एक उपदेष्टा के निवास की योजना करनी पड़ी थी। उस का नाम है विवेक इस विवेक ही के अनुरोध से मानव-जाति पाप से धड़-पकड़ करती हुई आज इस उन्नत अवस्था को प्राप्त हुई है। इसी विवेक की प्रेरणा से मनुष्य, अपनी आदिम अवस्था में हमारी सहायता से पापियों और अपराधियों का शासन करते थे। शासन का प्रथम आविष्कृत अस्त्र दण्ड हमी थे। परन्तु काल-क्रम से अब हम नाना प्रकार के उपयोगी आकारों में परिणत हो गये हैं। हमारी प्रयोग-प्रणाली में भी अब बहुत कुछ उन्नति, सुधार और रूपान्तर हो गये हैं।

पचास-साठ वर्ष के भीतर इस संसार में बड़ा परिवर्तन—बहुत उथल-पुथल—हो गया है। उस के बहुत पहले भी इस विशाल जगत् में हमारा राजत्व था। उस समय भी रूस में, आज कल ही की तरह, मार-काट जारी थी। पोलैंड में यद्यपि इस समय हमारी कम चाह है, पर उस समय वहाँ की स्त्रियों पर रूसी सिपाही मनमाना अत्याचार करते थे, और बराबर हमारी सहायता लेते थे। चीन में उस समय भी बंस-दण्ड का अटल राज्य था। टर्की में उस समय भी डण्डे चलते थे। श्यामवासियों की पूजा तब भी लाठी से ही की जाती थी। अफ्रीका से तब भी मम्बो-जम्बो (गेंड़े की खाल का हण्टर) अन्तर्हित न हुआ था। उस समय भी वयस्क भद्र महिलाओं पर चाबुक चलता

था। पचास-साठ वर्ष पहिले, संसार में जिस दण्ड शक्ति का निष्कपट साम्राज्य था, यह न समझना कि अब उस का तिरोभाव हो गया है। प्राचीन काल की तरह अब भी सर्वत्र हमारा प्रभाव जागरूक है। इशारे के तौर पर हम जमैका के हर प्रान्त में अपनी वर्त्तमान अखण्ड सत्ता का स्मरण दिलाये देते हैं परन्तु वर्त्तमान वृत्तान्त सुनाने की अपेक्षा पहले हम अपना पुराना वृत्तान्त सुना देना ही अच्छा समझते हैं।

प्राचीन काल में रोम-राज्य योरुप की नाक समझा जाता था। दण्डदान या दण्ड-विधान में रोम ने कितनी उन्नति की थी, यह बात शायद सब लोग नहीं जानते। उस समय हम तीन भाई थे। रोम वाले साधारण दण्ड के बदले कशा-दण्ड (हण्टर या कोड़े) का उपयोग करते थे। इसी कशा दण्ड के तारतम्य के अनुसार हमारे भिन्न-भिन्न तीन नाम थे। इन में से सब से बड़े का नाम फ्लैगेलम, (Flagellwm) मँझले का सेंटिका (Sentica) और छोटे का फ़ेरुला (Ferula) था। रोम के न्यायालय और वहाँ की महिलाओं के कमरे हम इन्हीं तीनों भाइयों से सुसज्जित रहते थे। अपराधियों पर न्यायाधीशों की असीम क्षमता और प्रभुता थी। अनेक बार प्रभु या प्रभु-पत्नियाँ, दया के वशवर्त्ती हो कर हमारी सहायता से अपने दासों के दुःखमय जीवन का अन्त कर देती थीं। भोजन के समय, आमन्त्रित लोगों को प्रसन्न करने के लिए, दासों पर कशाघात करने की पूर्ण व्यवस्था थी। दासियों को तो एक प्रकार से नङ्गा ही रहना पड़ता था। यहीं पर तुम हमारे प्रभाव का कहीं अन्त न समझ लेना। दासियों को एक और भी उपाय से दण्ड दिया जाता था। उन की चढ़ियों में

उनके लम्बे-लम्बे बाल बाँध दिये जाते थे। छत से लटक जाने पर उन के पैरों से कोई भारी चीज़ बाँध दी जाती थी, ताकि वे पैर न हिला सकें। यह प्रबन्ध हो चुकने पर उन के अङ्गों की परीक्षा करने के लिए हमारी योजना होती थी! यह सुन कर शायद तुम्हारा दिल दहल उठा होगा। पर हम तो बड़े ही प्रसन्न हैं। ऐसा ही दण्ड दासों को भी दिया जाता था। परन्तु बालों के बदले उन के हाथ बाँधे जाते थे।

इस से तुम समझ गये होगे कि रोम की महिलायें हमारा कितना आदर करती थीं। परन्तु यह बात वहाँ के कर्तृपक्ष को असह्य हो उठी। उन्हों ने कहा—'इस दण्डदेव का इतना आदर!' उन्हों ने हमारी इस उपयोगिता में विघ्न डालने के लिए कई क़ानून बना डाले। सम्राट् आड्रियन के राजत्व-काल में इस क़ानून को तोड़ने के अपराध में एक महिला को पाँच वर्ष का देश-निर्वासन दण्ड मिला था। अस्तु

अब हम जर्मनी फ्रांस, रूस, अमेरिका आदि का कुछ हाल सुनाते हैं। ध्यान लगा कर सुनिये। इन सब देशोंके घरों, स्कूलों और अदालतों में भी पहिले हमारा निश्चल राज्य था। इन के सिवा संस्कार-घरों (House of Correction) में भी हमारी षोड़शोपचार पूजा होती थी। इन संस्कार घरों अथवा चरित्र-सुधार-घरों में चरित्र और व्यवहार विषयक दोषों का सुधार किया जाता था। अभिभावक-जन अपनी दुश्चरित्र स्त्रियों और अधीनस्थ पुरुषों को इन घरों में भेज देते थे। वहाँ वे हमारी ही सहायता—हमारे ही आघात—से सुधारे जाते थे।

जर्मनी में तो हम पहले अनेक रूपों में विद्यमान थे। हमारे रूप थे कशा-दण्ड, वेत्र-दण्ड, चर्म्म-दण्ड आदि। कोतवालों

याधीशों को कशाघात करने के अधिकार प्राप्त थे।
घरों में इतभागिनी नारियों की संख्या अधिक होती
है बहुधा निरपराधिनी रमणियों को भी, दुष्टों के फंदे में
कशाघात सहने पड़ते थे। पहले वे नङ्गी कर डाली
; तब उन पर बेत पड़ते थे। जर्मन भाषा के ग्रन्थ
में इस कशाघात का उल्लेख सैकड़ों स्थान पर पाय

में भी हम ने मनमाना राज्य किया है। वहाँ के
में, किसी समय हमारा बड़ा प्रभाव था। विद्यालयों
कलेवरा बालिकाओं को भी हमें चूमना पड़ता था।
के उन्हें हमारा प्रयोग करने वालों का अभिवादन भी
ता था। फ्रान्स में तो हम ने पवित्र-हृदया कामिनियों
लों को भी पवित्र किया था। आप को इस बात
स न हो तो एक प्रमाण लीजिये। 'रोमन-डि-ज़ारोज़'
य में कविवर क्षुपिनेले ने स्त्रियों के विरुद्ध चार
मारी हैं। उन का भावार्थ कवि पोप के शब्दों में
'Every woman is at heart a rake". इस
न कर कुछ सम्माननीय महिलायें बेतरह कुपित हो
दिन उन्हों ने कवि को अपने कब्ज़े में पाकर उसे
हा। तब यह देख कर कि इन के पंजे से निकल
म्भव है, कवि ने कहा—"मैंने ज़रूर अपराध किया
मुझे सज़ा भोगने में कुछ भी उज्र नहीं। पर मेरी
है। वह यह कि उस उक्ति को पढ़ कर जिस महिला
अधिक बुरा लगा हो, वही मुझे दण्ड दे।" इस का
स्त्री न कर सकी। फल यह हुआ कि कवि पिटने
।

रूस में भी हमारा आधिपत्य रह चुका है। वहाँ तो सभी प्रकार के अपराध करने पर साधारण दण्ड या कशादण्ड से प्रायश्चित कराया जाता था। क्या स्त्री, क्या पुरुष, क्या बालक क्या वृद्ध, क्या राज-कर्मचारी, क्या साधारण-जन सभी अपराध करने पर इस के सब से अधिक पात्र थे। उन पर जो जो चाहता था, वही निःशङ्क और निःसङ्कोच हमारा प्रयोग करता था। हमारा प्रसाद पाकर वे पशुओं पर प्रकट करते थे। रूस के अमीरों और धनवानों से हमारी बड़ी ही गहरी मित्रता थी। दोष दमन करने में वे सिवा हमारे और किसी की भी सहायता, कभी भूल कर भी न लेते थे। उन का ख़याल था कि अपराधियों को अधमरा करने के लिए ही भगवान् ने हमारी सृष्टि की है।

रूस में तो पूर्वकाल में, दण्डा-घात प्रेम का भी चिन्ह माना जाता था। विवाहिता वधुएँ अपने पतियों से हमी को पाने के लिए सदा लालायित रहती थीं। यदि स्वामी, बीच-बीच में, अपनी पत्नी का दण्डदान नामक आदर न करता, तो पत्नी समझती कि उस के स्वामी का प्रेम उस पर कम होता जा रहा है। यह प्रथा केवल नीच या छोटे लोगों ही में प्रचलित न थी, बड़े-बड़े घरों में भी इस का पूरा प्रचार था। थर्कले नाम के लेखक ने लिखा है कि रूस में दण्डा-घातों की न्यूनाधिक संख्या ही से प्रेम की न्यूनाधिकता की माप होती थी। इस के सिवा स्नानागारों में भी हमारा प्रबल प्रताप छाया हुआ था। स्नान करने वालों का समस्त शरीर ही हमारे अनुग्रह का पात्र बनाया जाता था। स्टिफेंस साहब ने इस का विस्तृत विवरण लिख रक्खा है। विश्वास न हो तो उन की पुस्तक देख लीजिये।

अफ्रीका की असभ्य जातियों में स्त्रियों के ऊपर हमारा बड़ा प्रकोप रहता था। ज्योंही स्वामी अपनी स्त्री के सतीत्व-रत्न को जाते देखता था, त्योंही वह हमारी पूर्ण तृप्ति करके उस कुल-कलंकिनी को घर से निकाल बाहर करता था। कभी-कभी स्त्रियाँ भी हमारी सहायता से अपने-अपने स्वामियों की यथेष्ट खबर लेती थीं। अफ्रीका के पश्चिमी प्रान्तों में यद्यपि बालक-बालिकाओं पर हमारा विशेष प्रभाव न था, तथापि उन्हें इस से भी अधिक प्रभावशाली व्यक्तियों का सामना करना पड़ता था। नटखट और दुष्ट लड़कों और लड़कियों की आँखों में लाल मिर्चे मलदी जाती थीं। वे बेचारे इस योजना का कष्ट सहन करने में असमर्थ हो कर घंटों छटपटाते और चिल्लाते थे। वयस्कों को तो इस से भी अधिक यातनायें भोगनी पड़ती थीं। वे पहले पेड़ों की डालों से लटका दिये जाते थे। फिर वे खूब पीटे जाते थे। देह लोहू-लोहान हो जाने पर उस पर सर्वत्र लाल मिर्च का चूर्ण मला जाता था। याद रहे, ये सब पुरानी बातें हैं। आज-कल की बातें हम नहीं कहते; क्योंकि हमारे प्रयोग में यद्यपि इस समय कुछ परिवर्तन हो गया है, तथापि हमारा कार्यक्षेत्र घटा नहीं, बढ़ा ही है।

तुम्हारे एशिया खण्ड में भी हमारा राज्य दूर-दूर तक फैल रहा है। एशिया कोचक (एशिया माइनर) के यहूदियों में किसी समय हमारी बड़ी धाक थी। वहाँ हमारा प्रताप बहुत ही प्रबल था। ईसाई धर्म्म फैलाने में सेंटपाल नामक धर्म्माचार्य्य ने बड़े-बड़े अत्याचार सहे हैं। वे ३९ दफ़े कशाहत और ३ बार दण्डाहत हुए थे। बाइबिल में हमारे प्रयोग का उल्लेख सैकड़ों जगह आया है।

यहूदियों की तरह पारसियों में भी हमारा विशेष आदर था। क्या धनी, क्या निर्धन, सभी को यदा-कदा डण्डों की मार सहनी पड़ती थी। यह चाल बहुत समय तक जारी रही। तदन्तर वह बदल गई। तब माननीय मनुष्यों के शरीर की जगह उन के कपड़ों पर कोड़े लगाये जाने लगे।

चीन में तो हमारा आधिपत्य एक छोर से दूसरे छोर तक फैला हुआ था। ऐसा एक भी अपराधी न था जिसे सज़ा देने में हमारा प्रयोग न होता रहा हो। उच्च राज कर्मचारियों से लेकर दीन-दुखी भिखारियों तक को, अपराध करने पर, हमारे अनुग्रह का अनुभव प्रत्यक्षरूप से करना पड़ता था। डण्डे की मार खाने में, उस समय चीनी लोग अपना अपमान न समझते थे। हाँ, हमारे कृपा-कटाक्ष से उन्हें जो यन्त्रणा भोगनी पड़ती थी, उसे वे अवश्य नापसन्द करते थे। बड़े-बड़े सेना-नायक और प्रान्तीय शासक हमारे कठोर अनुग्रह को प्राप्त करके भी अपने उच्च पदों पर प्रतिष्ठित रहते थे। चीन में अपराधियों ही तक हमारे कोप की सीमा बद्ध न थी। कितने ही निरपराध-जन भी हमारे स्पर्श सुख का अनुभव करके ऐसे गद्गद हो जाते थे, कि फिर अपनी जगह से उठ तक न सकते थे। हमारी पहुँच बहुत दूर-दूर तक थी। चोर, डाकुओं और हत्यारों आदि को जब कोतवाल और पुलिस के अन्य प्रतापी अफ़सर न पकड़ सकते थे, तब वे हमारी शरण आते थे। उस समय हम उन पर ऐसा प्रेम प्रकट थे कि उछल-उछल कर उन की देह पर जा पड़ते थे। चीन की पुरानी अदालतों में जितने अभियुक्त और गवाह आते थे, वे बहुधा बिना हमारा प्रसाद पाये न लौट सकते थे।

चीन के कानून की अद्भुत लीला को कुछ न पूछिये। यहाँ अपराध के लिए अपराधी ही जिम्मेदार नहीं समझा जाता था, बल्कि उस के दूर-दूर तक के सम्बन्धी भी ज़िम्मेदार समझे जाते थे। जो लोग परिवारों के पीछे एक मण्डल की स्थापना कर लेते थे, उस मे भी उन की जिम्मेदारी कम न होती थी। सौ कुटुम्बों के फिरके का यदि कोई व्यक्ति अपराध करता तो उस के बदले में मण्डल सज़ा पाता था। देव सेवा के लिए रक्खे गये शूकर-शावक यदि बीमार या दुबले हो जाते तो, प्रति-शावक के लिए तत्त्वावधायक पर पचास डण्डे लगते थे।

चीन की विवाह-विधि में हमारी विशेष प्रतिपत्ति थी। पुत्र कन्या की सम्मति लिए बिना ही उन का पहिला पाणिग्रहण कराने का अधिकार माता-पिता को प्राप्त था, परन्तु दूसरा विवाह वे न करा सकते थे। यदि वे इस नियम का उल्लंघन करते तो, उन पर तड़ातड़ अस्सी डण्डे पड़ते थे। विवाह-सम्बन्ध स्थिर करके यदि कन्या का पिता उस का विवाह किसी और वर के साथ कर देता तो, उसे भी अस्सी डण्डे खाने पड़ते। जो लोग अशौचकाल में विवाह कर लेते थे, उन की पूजा पूरे एक सौ दण्डाघातों से की जाती थी। स्वामी के जीवन काल ही में जो रमणियाँ सम्राट द्वारा सम्मानित होतीं, वे विधवा होने पर पुनर्विवाह न कर सकती थीं। यदि कोई अभागिनी इस कानून को तोड़ती तो, उसे पुरस्कृत करने के लिए हमें सौ बार उस के कोमल कलेवर का चुम्बन करना पड़ता था।

ये हुईं पुरानी बातें। अपना नया हाल सुनाना हमारे लिए इस छोटे से लेख में, असम्भव है। अब यद्यपि हमारे उपकार के दिन बदल गये हैं, और हमारा अधिकार-क्षेत्र ...

संकुचित हो गया है, तथापि हमारी पहुँच नये-नये स्थानों में हो गई है। आजकल हमारा आधिपत्य कीनिया, ट्रांसवाल, केपकालनी आदि विलायतों में सब से अधिक है। वहाँ के गोरे कृषक हमारी ही सहायता से हबशी और भारतवासी कुलियों से बारह-बारह सोलह-सोलह घण्टे काम कराते हैं। वहाँ काम करते-करते, हमारा प्रसार पाकर अनेक सौभाग्य-शाली कुली, समय के पहले ही स्वर्ग सिधार जाते हैं। फीजी, जमाइका, गायना, मारिशस आदि टापुओं में भी हम खूब फल-फूल रहे हैं। जीते रहें गन्ने की खेती करने वाले गौरकाय विदेशी। वे हमारा अत्यधिक आदर करते हैं; कभी अपने हाथ से हमें अलग नहीं करते। उन की बदौलत ही हम भारतीय कुलियों की पीठ, पेट, हाथ आदि अङ्ग-प्रत्यङ्ग छू-छू कर कृतार्थ हुआ करते हैं; अथवा कहना चाहिए कि हम नहीं, हमारे स्पर्श से वही अपने को कृतकृत्य मानते हैं। अण्डमान टापू के क़ैदियों पर भी हम बहुधा ज़ोर आज़माई करते हैं। इधर भारत की जेलों में भी, कुछ समय से, हमारी विशेष पूछताछ होने लगी है। यहाँ तक कि एम० ए० और बी० ए० पास क़ैदी भी हमारे स्पर्श से अपना परित्राण नहीं कर सकते। कितने ही असहयोगी क़ैदियों की अक़्ल हमी ने ठिकाने लगाई है। हम और सब कहाँ की बातें तो बता गये, पर इंगलैंड के समाचार हमने एक भी नहीं सुनाये। भूल हो गई! क्षमा कीजिये! ख़ैर तब न सही, अब सही। अन्त में अब हम भारतवर्ष का भी कुछ हाल सुना देंगे। नये:—

लक्ष्मी और सरस्वती की विशेष कृपा होने से इंगलैंड उन्नत और सभ्य हो गया है। ये दोनों ठहरी स्त्रियाँ। और

स्त्रियाँ बलवानों ही को अधिक चाहती हैं, निर्बलों को नहीं। सो बलवान् होना बहुत बड़ी बात है। सभ्यता और उन्नति का विशेष आधार पशुबल ही है। हमारी उस उक्ति को सच समझिये और गाँठ में मज़बूत बाँधिये। सभ्य और समुन्नत होने के कारण इंगलैंड में अब हमारा आदर कम होता जाता है। तिस पर भी कशादण्ड का प्रचार वहाँ अब भी खूब है। कोड़े वहाँ अब भी खूब बरसते हैं। वहाँ के विद्यालयों में हमारी इस मूर्त्ति की पूजा बड़े भक्ति-भाव से होती है। हमारा प्रभाव घोड़े की पीठ पर जितना देखा जाता है, उतना अन्यत्र नहीं। इस के सिवा सेना में भी हमारा सम्मान अभी तक थोड़ा-बहुत बना ही हुआ है।

भारतवर्ष में तो हमारा एकाधिपत्य ही सा है। भारत अपाहिज है। इसलिए भारतवासी हमारी मूर्त्ति को बड़े आदर से अपनी छाती से लगाये रहते हैं। वे डरते हैं कि ऐसा न हो, जो कहीं धन-मान की रक्षा का एक मात्र बचा-खुचा यह साधन भी छिन जाय। इसी से हम पर उन लोगों का असीम प्रेम है। भारतवासी अशिक्षित और अनुन्नत होने पर भी विलास-प्रिय कम हैं। इसीलिए वे ऋषियों और मुनियों द्वारा पूजित हम दण्डदेव के आश्रय में रहना ही श्रेयस्कर समझते हैं। शिक्षकों का बेत या कमची, सवारों का हण्टर, कोचमैनों का चाबुक, गाड़ीवानों की औगी या छड़ी, गुण्डों के लट्ठ, शौक़ीन बाबुओं की पहाड़ी लकड़ी, पुलिसमैनों के डण्डे, बूढ़े बाबा की कुबड़ी, भंगेड़ियों के भवानीदीन और लठैतों की लाठियाँ आदि सब क्या हैं? ये सब हमारे ही रूप तो हैं। ये सभी शासन-कार्य में सहायक होते हैं। भारत में ऐसे सहस्रों आदमी हैं

न की जीविका-आधार एक मात्र हम ही हैं। थाना नाम के
स्थानों में हमारी ही पूजा तो होती है। हमारी कृपा और
ायता के बिना हमारे पुजारी (पुलिसमैन) एक दिन भी
ना कर्त्तव्य पालन नहीं कर सकते। भारत में तो एक भी
ने दर्जे का मजिस्ट्रेट ऐसा न होगा, जिस की अदालत के
ाते में हमारे उपयोग की योजना का पूरा-पूरा प्रबन्ध न हो।
ं में भी हमारी शुश्रूषा सर्वत्र हुआ करती है। इसी से
कहते हैं कि भारत में तो हमारा एकाधिपत्य है।

बहुत समय हुआ, हमने अपने अपूर्व, अलौकिक और
ुलोद्दीपक चरित का सारांश "प्रदीप" के पाठकों को
कर उन्हें मुग्ध किया था। उसे बहुत लोग शायद भूल
हों। इससे उसकी पुनरावृत्ति आज हमें करनी पड़ी। पाठक,
हीं कह सकते कि हमारा यह चारु-चरित सुन कर आप भी
हुये या नहीं। कुछ भी हो, हम ने अपना कर्त्तव्यपालन
दया। आप प्रसन्न हों या न हों, पर इससे हम कितने प्रसन्न
इ हम लिख नहीं सकते।

प्रश्न

१) डण्डे का प्राचीन काल में संसार के भिन्न-भिन्न देशों में
पयोग होता था ?

२) हास्य-रस में ही २ पृष्ठ का एक लेख लिखो, जिस में दण्ड
से डर की यन्त्रणाओं का वर्णन हो।

ब्रह्मचर्य्य

भाद्रण में एक मानपत्र का उत्तर देते हुए लोगों के अनुरोध से गांधी जी ने ब्रह्मचर्य पर एक लम्बा प्रवचन किया था। उसका सारांश यहाँ दिया जाता है:—

"आप चाहते हैं कि ब्रह्मचर्य्य के विषय पर मैं कुछ कहूँ। कई विषय ऐसे हैं कि जिन पर मैं 'नवजीवन' में प्रसंगोपात्त ही लिखता हूँ और उन पर व्याख्यान तो शायद ही देता हूँ; क्योंकि यह विषय ही ऐसा है कि कह कर नहीं समझाया जा सकता। आप तो मामूली ब्रह्मचर्य्य के विषय में कुछ सुनना चाहते हैं। जिस ब्रह्मचर्य्य की विस्तृत व्याख्या 'समस्त इन्द्रियों का संयम' है, उस के विषय में नहीं। इस साधारण ब्रह्मचर्य्य को भी शास्त्रों में बड़ा कठिन बतलाया गया है। यह बात ६६ प्रतिशत सच है। इस का पालन इसलिए कठिन प्रतीत होता है कि हम दूसरी इन्द्रियों को संयम में नहीं रखते, विशेष कर जीभ को। जो अपनी जिह्वा को अधिकार में रख सकता है, उस के लिए ब्रह्मचर्य्य सुगम हो जाता है। प्राणि-शास्त्रज्ञों का यह कहना सच है कि पशु जिस दर्जे तक ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उस दर्जे तक मनुष्य नहीं करता। इस का कारण देखने पर मालूम होगा कि पशु अपनी जीभ पर पूरा-पूरा निग्रह रखते हैं—प्रयत्न करके नहीं बल्कि स्वभाव से ही। वे केवल घास पर ही अपना निर्वाह करते हैं और सो भी केवल पेट भरने लायक हो खाते हैं। वे जीने के लिए खाते हैं, खाने के लिए नहीं जीते। पर हम तो इस के बिल्कुल विपरीत करते हैं। माँ बच्चे को तरह-तरह के सुस्वादु भोजन कराती है। वह मानती है कि बालक

र प्रेम दिखाने का यही सर्वोत्तम रास्ता है। ऐसा करते हुए म उन चीज़ों का स्वाद बढ़ाते नहीं बल्कि घटाते हैं। स्वाद तो भूख में रहता है। भूख के वक्त सूखी रोटी भी मीठी लगती है और बिना भूख के आदमी को लड्डू भी फीके और बेस्वाद मालूम होंगे। पर हम तो न जाने क्या-क्या खाकर पेट को ठसाठस भरते हैं और फिर कहते हैं कि ब्रह्मचर्य्य का पालन नहीं हो सकता।

"जो आँखें हमें ईश्वर ने देखने के लिए दी हैं, उन्हें हम मलीन करते हैं और देखने लायक वस्तुओं को देखना नहीं सीखते। 'माता गायत्री क्यों न पढ़े और बालकों को यह गायत्री क्यों न सिखाए?' इस की छानबीन करने के बदले अगर वह उस के तत्त्व—सूर्योपासना—को समझ कर उन से सूर्योपासना कराये तो कितना अच्छा हो? सूर्य की उपासना तो सनातनी और आर्यसमाजी दोनों ही कर सकते हैं। यह तो मैं ने स्थूल अर्थ आपके सामने उपस्थित किया। इस उपासना के अर्थ क्या हैं? यही कि अपना सिर ऊँचा रख कर, सूर्य-नारायण के दर्शन करके, आँख की शुद्धि की जाय। गायत्री के रचयिता ऋषि थे, द्रष्टा थे। उन्हों ने कहा कि सूर्योदय में जो काव्य है, जो सौन्दर्य है, जो लीला है, जो नाटक है, वह और कहीं नहीं दिखाई दे सकता। ईश्वर के जैसा सुन्दर सूत्रधार अन्यत्र नहीं मिल सकता, और आकाश से बढ़कर भव्य रंग-भूमि भी कहीं नहीं मिल सकती। पर आज कौन-सी माता बालक की आँखें धोकर उसे आकाश-दर्शन कराती है? बल्कि माता के भावों में तो अनेक प्रपंच रहते हैं। बड़े-बड़े घरों में जो शिक्षा मिलती है, उसके फलस्वरूप तो लड़का शायद बड़ा

अफ़सर होगा,पर इस बात का कौन विचार करता है कि घर में जाने-वेजाने जो शिक्षा बच्चों को मिलती है, उस से कितनी बातें वह ग्रहण लेता है। माँ-बाप हमारे शरीर को ढकते हैं, सजाते हैं, पर इस से यहीं शोभा बढ़ सकती है ? कपड़े बदन को ढकने के लिए हैं, सर्दी-गर्मी से बचाने के लिए हैं, सजाने के लिए नहीं। अगर बालक का शरीर वज्र-सा दृढ़ बनाना है, तो जाड़े से ठिठुरते हुए लड़के को एक अङ्गाठी के पास बैठाने के बदले मैदान में खेलने-कूदने भेज देंगे, या खेत में काम पर छोड़ देंगे। उस का शरीर दृढ़ बनाने का बस यही एक उपाय है। जिस ने ब्रह्मचर्य्य का पालन किया है, उस का शरीर अवश्य ही वज्र की तरह होना चाहिए। हम तो बच्चे के शरीर का सत्यानाश कर डालते हैं। उसे घर में रखने से जो झूठी गर्मी आती है, उसे हम छाजन की उपमा दे सकते हैं। दुलार-दुलार कर तो हम उस का शरीर सिर्फ बिगाड़ ही पाते हैं।

यह तो हुई कपड़े की बात। फिर घर में तरह-तरह की बातें करके हम उस के मन पर बुरा प्रभाव डालते हैं। उस के विवाह की बातें किया करते हैं, और इसी प्रकार की चीज़ें और दृश्य भी उसे दिखाये जाते हैं। मुझे तो आश्चर्य होता है कि हम केवल जंगली ही क्यों न बन गये! मर्यादा तोड़ने के अनेक साधनों के होते हुए भी मर्यादा की रक्षा हो जाती है। ईश्वर ने मनुष्य की रचना इस तरह से की है कि पतन के अनेक अवसर आते हुए भी वह बच जाता है। यदि हम ब्रह्मचर्य्य के मार्ग से ये सब विघ्न दूर कर दें तो उसका पालन बहुत सरल हो जाय।

ऐसी हालत होते हुए भी हम दुनियाँ के साथ शारीरिक प्रतिरोध करना चाहते हैं। उस के दो भाग हैं। एक आसुरी और दूसरा दैवी। आसुरी मार्ग है—शरीर-बल प्राप्त करने के लिए हर प्रकार के उपायों से काम लेना—हर तरह की चीज़ें खाना, गोमांस खाना इत्यादि। मेरे लड़कपन में मेरा एक मित्र मुझ से कहा करता था कि माँसाहार हमें अवश्य करना चाहिए, नहीं तो हम अंग्रेज़ों की तरह हृष्ट-पुष्ट न हो सकेंगे। जापान को भी जब दूसरे देश के साथ प्रतिरोध करने का अवसर आया तब वहाँ गो-माँस भक्षण को स्थान मिला। सो, यदि आसुरी मत से शरीर को तैयार करने की इच्छा हो तो इन चीज़ों का सेवन करना होगा।

परन्तु यदि दैवी साधन से शरीर तैयार करना हो तो ब्रह्मचर्य ही उस का एक उपाय है। जब मुझे कोई नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहता है, तब मैं अपने आप पर तरस खाता हूँ। इस अभिनन्दन-पत्र में मुझे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहा है। सो, मुझे कहना चाहिए कि जिन्होंने यह अभिनन्दन-पत्र तैयार किया है, उन्हें पता नहीं है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी किस चीज़ का नाम है। जिस के बाल-बच्चे हुए हैं, उसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी कैसे कह सकते हैं? नैष्ठिक ब्रह्मचारी को न तो कभी ज्वर आता है, न कभी सिर दर्द होता है, न कभी खाँसी होती है, न कभी अपेंडिसाइटिज़ होता है। डाक्टर लोग कहते हैं कि नारंगी का बीज आँत में रह जाने से भी अपेंडिसाइटिज़ होता है। परन्तु जो शरीर स्वच्छ और नीरोगी हो उस में ये बीज टिकेंगे कैसे? जब आतें शिथिल पड़ जाती हैं, तब वे ऐसी चीज़ों को अपने आप बाहर नहीं निकाल सकतीं। मेरी भी आँतें शिथिल हो गई

होगी । इसी से मैं ऐसी कोई चीज़ का पाचन न कर सका हूँगा। बच्चा ऐसी अनेक चोज़ें खा जाता है। माता इस का कहाँ ध्यान रखती है ? पर उस की आँतों में इतनी शक्ति स्वाभाविक तौर पर ही होती है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि मुझ पर नैष्ठिक ब्रह्मचर्य्य के पालन का आरोप करके कोई मिथ्याचारी न हो। नैष्ठिक ब्रह्मचारी का तेज तो मुझ से अनेक गुना अधिक होना चाहिए। मैं आदर्श ब्रह्मचारी नहीं। हाँ यह सच है कि मैं वैसा बनना चाहता हूँ। मैंने तो आप के सामने अपने अनुभव की कुछ बूँदें रखी हैं, जो ब्रह्मचर्य्य की सीमा बताती हैं।

ब्रह्मचर्य्य-पालन का अर्थ यह नहीं कि मैं किसी स्त्री को स्पर्श न करूँ। पर ब्रह्मचारी बनने का अर्थ यह है कि स्त्री का स्पर्श करने से भी मुझ में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न न हो, जिस तरह एक काग़ज़ को स्पर्श करने से नहीं होता। मेरी बहन बीमार हो और उसकी सेवा करते हुए ब्रह्मचर्य्य के कारण मुझे हिचकना पड़े तो वह ब्रह्मचर्य्य कौड़ी काम का नहीं। जिस निर्विकार दशा का अनुभव हम मृत शरीर को स्पर्श करके कर सकते हैं, उसी का अनुभव जब हम किसी सुन्दरी से सुन्दरी युवती का स्पर्श करके कर सकें तभी हम ब्रह्मचारी हैं। यदि आप यह चाहते हों कि बालक वैसा ब्रह्मचर्य्य प्राप्त करें, तो इस का अभ्यासक्रम आप नहीं बना सकते, मुझ-जैसा, अधूरा ही क्यों न हो, पर, ब्रह्मचारी ही बना सकता है।

ब्रह्मचारी स्वाभाविक संन्यासी होता है। ब्रह्मचर्य्याश्रम संन्यासाश्रम से भी बढ़ कर है। पर उसे हम ने गिरा दिया है। इस से ब्रह्मचर्य्याश्रम गृहस्थाश्रम भी बिगड़ा है, वानप्रस्थाश्रम भी

बिगड़ा है और संन्यास का तो नाम भी नहीं रह गय
हमारी ऐसी असह्य अवस्था हो गई है।

ऊपर जो आसुरी मार्ग बताया गया है, उस का अनुक
कर के तो आप पाँच-सौ वर्षों के बाद भी पठानों का मुकाब
न कर सकेंगे। दैवी मार्ग का अनुकरण, यदि आज हो तो अ
ही पठानों का मुक़ाबला हो सकता है, क्योंकि दैवी साधन
आवश्यक मानसिक परिवर्त्तन एक क्षण में हो सकता है।
शारीरिक परिवर्त्तन करते हुए युग बीत जाते हैं। इस दैवी
का अनुकरण तभी हम से होगा जब हमारे पल्ले पूर्व जन्म
पुण्य होगा, और माता-पिता हमारे लिए उचित सा
पैदा करेंगे।

प्रश्न

(१) बल प्राप्ति के आसुरी और दैवी मार्ग कौन से हैं?
कौन सा अच्छा है और क्यों?

(२) ब्रह्मचर्य के कौन-कौन से दो अर्थ हैं और उन में से
पर लेखक का प्रवचन है।

(३) गायत्री का साधारण ज्ञान किस प्रकार माताओं
बच्चे को पहुँचाया जाता है?

(४) वास्तविक ब्रह्मचारी के क्या लक्षण हैं?

क्षय-रोग

यक्ष्मा राजयक्ष्मा, शोष इस रोग के दूसरे नाम हैं। यूनानी हकीम इस को तपेदिक् और सिल कहते हैं। डाक्टरों में इस के कंज़म्पशन (Consumption), थाइसिस (Thisis) और ट्यूबर्क्युलोसिस (Tuberculosis) कहते हैं।

यह कोई नया रोग नहीं है, जैसा कि कुछ लोग कहा करते हैं। प्राचीन मिश्र वासियों को यह रोग मालूम था। प्राचीन यूनानी हकीमों ने अपने ग्रन्थों में इस का वर्णन किया है। भारत वर्ष के प्रसिद्ध *चरक संहिता नामक ग्रन्थ में इस रोग का* विस्तार पूर्वक वर्णन है।*

क्षय रोग किसी विशेष देश या जाति में ही नहीं पाया जाता। युरोप, अमेरिका, भारतवर्ष इत्यादि सभी देशों में यह होता है। *यह रोग केवल मनुष्य को ही नहीं प्रत्युत गाय, बैल,* वंदर पक्षी और मछली को भी होता है। मनुष्य जाति में यह रोग कितना पाया जाता है, इस का निम्न लिखित बातों से अनुमान लगाया जा सकता है :—

१—जाँच-पड़ताल से यह मालूम हुआ है कि जितनी मृत्यु संसार भर में होती हैं, उन के सातवें भाग का कारण यही रोग होता है।

२—सभ्य संसार में प्रति सैकड़े कम से कम एक मृत्यु क्षय रोग से अवश्य होती है। या यह समझिये कि *नित्य कोई ८६००० मनुष्य इस रोग से मर जाते हैं।*

३—उन्नीसवीं शताब्दी में जितने युद्ध हुए उन सभों में कुल १४०००० मनुष्य मारे गये। हिसाब लगाया गया है कि इन्हीं

* देखो चरक, चिकित्सा स्थान अ० ८

देशों में उसी शताब्दी में क्षय रोग के कारण ३०००० के लगभग मौतें हुईं।

४—लखनऊ जैसे बड़े-बड़े और गुंजान बसे हुए शहरों में २० फ़ीसदी मौतें इस रोग से होती हैं।

क्षय रोग को हैज़ा, महामारी (प्लेग) इत्यादि भयानक रोगों से भी अधिक हानिकारक और भयानक समझना चाहिए। ये रोग तो साल भर में दो-चार महीने ही अपना काम करते हैं और अपनी भेंट लेकर चले जाते हैं, परन्तु क्षय रोग सालभर बराबर अपनी भेंट लिया करता है।

रोग का कारण

क्षय रोग उन रोगों में से है जो, जीवाणुओं (Micro-organisms) से उत्पन्न होते हैं। हैज़ा, प्लेग, टायफ़ायड, फुफ्फुसप्रदाह, इसी प्रकार के रोग हैं। क्षय का कारण एक शलाकाकार कीटाणु (Bacillus) है। इसकी लम्बाई $\frac{१}{२४०००}$ इंच से $\frac{१}{१००००}$ इंच तक और चौड़ाई अथवा मोटाई $\frac{१}{१०००००}$ इंच होती है। यद्यपि ये शलाकायें नंगी आँखों से दिखाई नहीं देतीं तथापि इस में संदेह नहीं कि ये अत्यंत परिश्रमी, पराक्रमी, भयानक और दृढ़ होती हैं। सील, अँधेरा, मैल और धूल इन कीटाणुओं के लिए बहुत हितकारी हैं। ये बहुत नीचे दर्जे के शीत को सह सकते हैं परन्तु अधिक गर्मी और सूर्य का प्रकाश उन को बहुत हानि पहुँचाता है। सूर्य की तेज़ रोशनी में ये थोड़ी ही देर में मर जाते हैं।

जब ये कीटाणु हमारे या अन्य प्राणियों के शरीर में किसी प्रकार घुस जाते हैं, तो अवसर मिलने पर वे अति शीघ्रता से बढ़ते हैं और तंतुओं का नाश करते हैं। वे विष भी बनाते हैं, जो रक्त और लसीका (Lymph) द्वारा संपूर्ण शरीर में भ्रमण करते हैं और अंगों को हानि पहुँचाते हैं।

ये कीटाणु शरीर के किसी भाग पर आक्रमण कर सकते हैं; जैसे अस्थि, संधियाँ, त्वचा, लसीका-ग्रन्थियाँ, अंत्र, फुफ्फुस। अधिकतर उनका आक्रमण फुफ्फुसों पर होता है। जो बातें इस लेख में लिखी जायँगी, उन को फुफ्फुस के क्षय रोग के सम्बन्ध में ही समझना चाहिए। फुफ्फुसीय क्षय-रोग न केवल उस विशेष व्यक्ति के लिए ही अत्यंत विषम और भयानक है, प्रत्युत उस से और लोगों की जानें भी जोखों में रहती हैं। जब रोग पुराना हो जाता है तो क्षयी के बलगम (कफ़) में करोड़ों कीटाणु रहते हैं; यदि किसी विधि से इस कफ़ का कुछ भाग और मनुष्यों के शरीर में पहुँच जावे तो वे वही रोग पैदा कर सकते हैं। अस्थि, ग्रन्थि इत्यादि अन्य अंगों का क्षय-रोग विशेष व्यक्ति के लिए तो संकट है, परन्तु अन्य मनुष्यों के लिए फुफ्फुसीय क्षय-रोग के भाँति हानिकारक नहीं।

रोग किस प्रकार फैलता है

क्षय-रोग आतशक (उपदंश, फिरंगरोग) की भाँति पुश्तैनी या पारंपरीण नहीं है। यदि क्षयी की संतान को क्षय-रोग हो जावे तो उस का कारण यह नहीं है कि जन्म से ही उस के शरीर में रोग के कीटाणु थे। यदि क्षयी की संतान का पालन-पोषण भली प्रकार हो और वह क्षयग्रस्त माता या पिता के

पास न रखी जावे तो उस को क्षय-रोग न होगा। क्षयी कमज़ोर होता है, इस कारण उस के बालक भी कमज़ोर होते हैं। क्षय के कीटाणु (और अन्य रोगों के कीटाणु भी) कमज़ोर शरीरों में भले प्रकार बढ़ते हैं; इस कारण ऐसे बालकों को भी क्षय-रोग होने की अधिक सम्भावना रहती है—विशेषकर ऐसी दशा में जब कि बेपरवाही के कारण उन के माता या पिता के कीटाणु से भरे हुए बलगम के कण वायु या भोजन द्वारा हर रोज़ उन के शरीरों में पहुँचते रहें।

क्षय के कीटाणु हमारे शरीर में क्षय-रोगियों से ही आते हैं, चाहे वे रोगी मनुष्य हों चाहे अन्य प्राणी। वैज्ञानिक इस विचार में एकमत हैं कि जो कीटाणु मछलियों और पक्षियों में क्षय उत्पन्न करते हैं वे मनुष्य में क्षय उत्पन्न नहीं कर सकते। परन्तु गाय, बैल में क्षय उत्पन्न करने वाले कीटाणु मनुष्य के शरीर में पहुँच कर क्षय-रोग का कारण हो सकते हैं। गाय, बैल के क्षय-रोग के कीटाणु हमारे शरीर में मांस या दुग्ध द्वारा पहुँचा करते हैं। क्षय के कीटाणु हमारे शरीर में निम्न-लिखित विधियों से पहुँच सकते हैं—

(१) श्वास द्वारा—जब क्षय-रोगी खाँसता है तो उसके मुख से बलग़म के नन्हे नन्हे ज़र्रे निकलकर वायु में मिल जाते हैं। हर एक ज़र्रे में करोड़ों कीटाणु रहते हैं। श्वास द्वारा ये कीटाणु भरे हुए ज़र्रे दूसरे मनुष्यों के फुफ्फुसों में पहुँच सकते हैं और रोग उत्पन्न कर सकते हैं।

क्षयी मकान के फ़र्श या दीवारों पर थूकता है। बलग़म सूख जाता है और धूल में मिल जाता है। धूल में मिले हुए

बलग़म के ज़र्रों में कीटाणु बहुत समय तक जीवित रहते हैं। मकान में झाड़ू लगायी जाती है, जिस से कीटाणु भरी हुई धूल वायु में मिल जाती है। श्वास द्वारा यह धूल हमारे फुप्फुसों में पहुँच सकती है। धूल भोजन की वस्तुओं पर भी बैठ जाती है और इस प्रकार भोजन द्वारा कीटाणु हमारे शरीर में पहुँच सकते हैं।

(२) भोजन द्वारा (अ) बलग़म के ज़र्रे रोगी के मुख से निकल कर आस-पास रक्खे हुए भोजन पर बैठ जावें।

(आ) झाड़ू से उड़ायी हुई धूल भोजन पर बैठ जावे।

(ई) क्षय-रोगी स्वस्थ मनुष्यों के साथ एक ही थाल में भोजन करे या स्वस्थ मनुष्य रोगी का झूठा जल पीवे।

(उ) रोगी अपने मैले हाथों से, जिन में बलग़म का कुछ अंश लगा हो, दूसरों का भोजन छूवे।

(ऊ) मक्खियाँ बलग़म पर बैठ कर फिर भोजन पर जा बैठें।

(३) ज़ख़्मों द्वारा—हमारे शरीर में कोई ज़ख़्म हो या त्वचा कहीं से कट जावे और इन ज़ख़्मों में रोगी का बलग़म या क्षयज फोड़े का पीप लग जावे तब भी रोग के होने का भय रहता है।

(४) ऐसी गाय का दूध पीना जिसे क्षयरोग विशेषकर स्तनों का क्षय-रोग है—यदि गाय या बैल के [illegible] के कीटाणु हैं और यह मांस बिना भले प्रकार [illegible], तब भी क्षय-रोग के होने [illegible] क्षय-रोग ([illegible] वाली गायों

किन किन दशाओं में क्षय के होने की अधि संभावना रहती है ?

यह आवश्यक नहीं है कि जब क्षय-रोगोत्पादक कीटा किसी व्यक्ति के शरीर में पहुँच जावें तो उस को क्षय रोग ह ही जावे। हम में से बहुत कम मनुष्य ऐसे होंगे जिन के शरीर मे कभी न कभी क्षय के कीटाणु न पहुँचे हों; फिर भी हम सब को यह रोग नहीं होता। इस का कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्य में एक स्वाभाविक रोगनाशक शक्ति होती है, जो किसी मनुष्य में कम होती है किसी में अधिक। जब यह शक्ति अधिक होती है तब मनुष्य स्वस्थ रहता है और रोग उस को बहुत कम सताते हैं। जब यह शक्ति कम होती है या किसी कारण एक दम कम हो जाती है (जैसे स्त्रियों में प्रसव के समय) तब रोग, विशेष कर क्षय ऐसे भयानक रोग, उस को तुरंत घेर लेते हैं। हमारे शरीर भूमि के समान हैं और रोगोत्पादक जन्तु बीज के समान। बीज ऊसर भूमि में नहीं जमता, परन्तु उर्वरा भूमि में शीघ्र ही जम जाता है। शरीर रोगोत्पादक जन्तुओं के लिए ऊसर भूमि के समान है। स्वाभाविक रोगनाशक शक्ति के कारण ये जन्तु पनपने ही नहीं पाते और तुरन्त मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अन्यतः अस्वस्थ शरीर उर्वरा भूमि के समान है, जिस में जन्तु बिना रोक-टोक के बढ़ते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं। अब हम वह बातें बतलाते हैं, *जिन से हमारे शरीर* रोगोत्पादक जन्तुओं के लिए, विशेषकर क्षय के कीटाणुओं के लिए, उर्वरा भूमि बन जाते हैं—

(१) गंदी और अशुद्ध वायु—शुद्ध वायु हमारे जीवन के लिए एक परमावश्यक चीज़ है। भोजन बिना मनुष्य तीन

सप्ताह जीवित रह सकता है, जल बिना तीन दिन जीवित रह सकता है परन्तु वायु बिना तीन मिनट भी जीवित रहना कठिन है। जिन कारणों से वायु खराब हो जावे, उन सब को स्वास्थ्य के लिए शत्रु के समान जानना चाहिए। शहरों की गलियों और कूचों में जहाँ ऊँचे-ऊँचे मकान बहुत पास-पास बने रहते हैं, वायु का संचार भले प्रकार नहीं होता। एक कमरे में बहुत से मनुष्यों का रहना, सोने के कमरे में बहुत-सा असबाब रखना, मकान में खिड़कियों और दरवाज़ों का कम होना; सोते समय सब खिड़कियों और दरवाज़ों को बन्द करके वायु का रास्ता बन्द कर देना, मुँह ढाँक कर सोना, जिस से मलिन पदार्थ जो एकबार श्वास द्वारा शरीर से बाहर निकल चुके हैं, फिर फुप्फुसों में घुस जावें, रहने-सहने के मकान में ढंगरों को भी रखना, मकान के पास अस्तबल और कूड़ाखाने का होना ये सब बातें वायु को गंदा और अशुद्ध करती हैं। आबादी के पास बड़ी-बड़ी फैक्टरियों; कारखानों और पुतलीघरों का होना भी अच्छा नहीं; ऐसे स्थानों के आस-पास की वायु में धूल-मिट्टी बहुत रहती है।

भारतवर्ष में स्त्रियों में जो परदे का रिवाज है, वह उन के स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हानिकारक है। परदे के कारण स्त्रियों को घरों में भीतर ही अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है और बाहर की खुली और पवित्र वायु बेचारियों को कभी मिलती ही नहीं। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि भारतवर्ष में उन जातियों की *स्त्रियों का स्वास्थ्य, जिन में परदे का रिवाज* नहीं है, परदा करने वाली स्त्रियों के स्वास्थ्य की अपेक्षा बहुत अच्छा होता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में क्षय-रोग के अधिक

पाये जाने का एक कारण परदे का रिवाज भी है। मुसलमान स्त्रियों में हिन्दू स्त्रियों की अपेक्षा क्षय अधिक पाया जाता है

(२) दरिद्रता—भोजन का कम मिलना—हमारा शरीर उस भोजन से बनता है, जो हम खाते हैं। रोगनाशक वस्तुएँ भी इन्हीं भोजन से उत्पन्न होती हैं। जब पौष्टिक भोजन यथेष्ट परिमाण में नहीं मिलता तब शरीर निर्बल हो जाता है, हमारी रोगनाशक शक्ति घट जाती है और अनेक प्रकार के रोग, विशेष कर क्षय-रोग जो सदा मुँह बाये अपने शिकार की घात में बैठा रहता है, घर दबाते हैं।

छोटे बालकों के लिए दूध एक बड़ी आवश्यक चीज़ है। भारतवर्ष में अच्छे दूध का सस्ते मूल्य पर आसानी से प्राप्त होना दिन प्रति दिन कठिन होता जाता है। लाखों बच्चे अच्छे दूध न मिलने के कारण बेमौत मर जाते हैं। हर एक भारत-हितैषी का यह बड़ा धर्म है कि वह ऐसी तदबीरें सोचे और काम में लावे जिस से अच्छा दूध इतना सस्ता मिले कि मामूली आमदनी वाले मनुष्य उस को मोल ले सकें।

गर्भवती स्त्रियों को अच्छा पौष्टिक भोजन मिलना चाहिए जिस से वे बलिष्ठ संतान उत्पन्न करें और अपनी संतान को अपने स्तनों से दूध भी अच्छी तरह कम से कम नौ महीने तक पिला सकें। बच्चा जनने के पीछे भी उन को अच्छा सहज में पचने वाला पौष्टिक भोजन यथेष्ट परिमाण में मिलना चाहिए।

(३) थकान—अपनी शक्ति से बढ़ कर कार्य में प्रवृत्त होना—अधिक शारीरिक और मानसिक परिश्रम, स्वास्थ्य को बिगाड़ कर हमारी स्वाभाविक रोगनाशक शक्ति को घटाता और हमारे शरीर को रोगोत्पादक कीटाणुओं के लिए उर्वरा भूमि बनाता है।

अपनी शक्ति से बढ़ कर युद्ध करना, पढ़ना, भार उठाना, मार्ग चलना, लंघन करना, नदी के वेग को बलपूर्वक रोकना, छलांग मारना; ईर्षा, भय, उत्कण्ठा, क्रोध, शोक, मैथुनादि सब क्षय के परोक्ष कारण हैं।*

प्रसव के पश्चात् स्त्री निर्बल हो जाती है और उस की रोग-नाशक शक्ति कम हो जाती है। यदि इन दिनों उसको गंदे मकान में, जहां शुद्ध वायु और सूर्य के प्रकाश का प्रवेश न हो, रखें, सहज में पचने वाला भोजन न दें; शरीर की सफाई के लिए मैला-कुचैला कपड़ा दें, तो उस को क्षय के हो जाने की अधिक संभावना होती है।

जो स्त्रियां थोड़े-थोड़े समय के पीछे बच्चे जनती हैं, उन को इस रोग के होने की अधिक संभावना रहती है।

(४) अस्वच्छता—शरीर को जल से धो कर शुद्ध न करना, जिस से त्वचा के छिद्र मैल या सूखे हुए पसीने से बन्द हो जावें और पसीने को भले प्रकार बाहर न निकलने दें, गहरा श्वास न लेना, जिस से फुप्फुस भले प्रकार न फूलें और उन की शिखर और किनारे वायु से खूब न भरें और उन में अच्छी तरह रक्त का संचार न हो, अशुद्ध वायु में श्वास लेना, जिस से रक्त भली प्रकार शुद्ध न हो और ओषजन, जो सब कार्यों और क्रियाओं के लिए परमावश्यक है यथा परिमाण शरीर में न पहुँचे। दांतों और मुँह को दातौन, मंजन, कुल्ली इत्यादि से खूब न धोना, जिस से भोजन के अंश मुँह में सड़ें और उन के सड़ाव से उत्पन्न होने वाली विषैली वस्तुएं शरीर में पहुँच कर हानि पहुँचावें। कब्ज़ का रहना, जिससे मल आंत्र में सड़े और विषैले पदार्थ रक्त में पहुँच कर स्वास्थ्य का

*देखो चरक संहिता चिकित्सास्थान अ० ८ श्लोक १२ से १६ तक।

नाश करें। जब शौच की इच्छा हो तब मलत्याग करने न जाना अथवा उस को थोड़ी-बहुत देर तक रोके रखना। मूत्र को रोकना जिस से वे मलिन पदार्थ, जो शरीर से तुरन्त ही बाहर निकलने चाहिए थे, न निकलें और मूत्राशय और गुर्दों को हानि पहुँचे ये और ऐसी ऐसी और बात शरीर को अस्वच्छ बनाती हैं और स्वास्थ्य को बिगाड़ती हैं।

५—भंग अफ़ीम, तम्बाकू, चरस, मद्य इत्यादि चीज़ों का सेवन हमारे स्वास्थ्य पर ज़हरीला असर डालता है। हुक्का पीना दो प्रकार से हानि पहुँचाता है—

(१) तंबाकू का ज़हर हमारे शरीर में पहुँचता है।

(२) एक मनुष्य दूसरे का थूक और बलग़म चाटता है। किसी दूसरे मनुष्य का थूक चाटना, चाहे वह व्यक्ति कितना प्यारा और माननीय क्यों न हो, स्वयं ही इतनी मलिन आदत कि उस को त्यागने में ज़रा भी देर न करनी चाहिए। कौन जानता है कि जिस मनुष्य का जूठा हुक्का आप पी रहे हैं उस क्षय-रोग है या नहीं? यदि है तो क्षय के कीटाणु आप के मुख आसानी से आ सकते हैं। न भी हो तब भी दूसरे का थूक अपने मुख में ले जाने की कौन आवश्यकता है।

(६) बाल विवाह—यह कुरीति भारतवर्ष की बहुत आपत्तियों का एक मूल कारण है। इस से न केवल व्यक्तियों को प्रत्युत संपूर्ण जाति और देश को आपत्ति पहुँचती है। छोटी आयु में बच्चा जनने से स्त्री का स्वा बिगड़ जाता है और क्षय के भयानक कीटाणु, जो सदा मनुष्यों की घात में रहा करते हैं, उन के शरीर में प्रवेश कर और उन को अपना शिकार बनाते हैं। इस संयोग

संतान उत्पन्न होती है वह निर्बल होती है और इस जीवन के घोर संग्राम (जीवन प्रतिवादिता) struggle for existence के लिए सर्वथा अयोग्य होती है। ऐसी निर्बल, अस्वस्थ संतान से गुलामी के सिवाय और किस चीज़ की आशा की जा सकती है?

(७) अन्य रोगों के कारण उत्पन्न हुई निर्बलता। उपदंश, फुफ्फसप्रदाह, चेचक, खसरा जैसे रोगों से शरीर अत्यन्त निर्बल हो जाता है। ऐसे रोगों के पश्चात् बड़ी सावधानी से रहना चाहिए। मद्यपान, वेश्यागमन, उपदंश (और सुज़ाक भी) यह तीनों चीज़ें देश के लिए अत्यन्त हानिकारक हैं। यदि इन में से एक भी चीज़ कम हो जावे तो शेष दोनों चीज़ें कम हुए बिना रह नहीं सकतीं और तीनों चीज़ों के कम होने से क्षय जैसे रोग भी अवश्य कम होंगे।

चिकित्सा

पाठकों को याद रखना चाहिए कि अभी तक किसी चिकित्सा में (वैद्यक, डाक्टरी, हिकमत इत्यादि) इस रोग के लिए कोई अमोघ औषध मालूम नहीं हुई। किसी वैद्य, डाक्टर या हकीम ने अभी तक यह दावा नहीं किया कि वह ऐसी औषध जानता है, जो इस रोग को अवश्य अच्छा कर देगी। किसी औषध के सम्बन्ध में यह भी नहीं कहा जा सकता कि वह रोग अच्छा न करे तो कम से कम उसे बढ़ने भी न देगी।

रोगी को ऐसे मकान में रहना चाहिये जहाँ वायु अच्छी तरह आती-जाती हो। ठंडी वायु के झोंके और गर्म लू तो स्वस्थ मनुष्य को भी हानिकारक हैं, इसलिए इन से रोगी सदा बचा रहे। जहाँ रोगी रहता है, वहाँ सूर्य का प्रकाश अवश्य

पहुँचे। सूर्य के प्रकाश में कीटाणुनाशक शक्ति होती है और उस से हमारी रोग नाशक शक्ति भी बढ़ती है। गर्म स्थान से एक दम ठंडे स्थान में जाना या ठंडे स्थान से एक दम गर्म स्थान में जाना अच्छा नहीं। जब रोगी को ज्वर आता हो तब वह किसी प्रकार का शारीरिक परिश्रम न करे, चारपाई पर लेटा रहे। तजुर्बे से यह बात मालूम की गयी है कि यदि रोगी कुछ दिनों तक शय्या पर आराम से लेटा रहे तो उस का ज्वर धीरे-धीरे कम होने लगता है।

रोगी को चाहिए कि किसी योग्य चिकित्सक से अपनी चिकित्सा करावे और जैसा वह बतलावे वैसा ही करे। चिकित्सक यथावश्यकता औषधियों का भी प्रयोग करायेगा। क्षय रोगी की चिकित्सा मामूली घरों में वैसी नहीं हो सकती जैसी कि होनी चाहिए। इस रोग में रोगी का जितना उपचार हो उतना ही अच्छा है। यूरोप और अमरीका में बहुत से स्वास्थ्य-भवन बनाये गये हैं, जहाँ क्षय-रोगियों का विशेष रीति से उपचार और चिकित्सा होती है। इन स्वास्थ्य-भवनों में बहुत से रोगी अच्छे हो जाते हैं। उत्तर-भारत में दो स्वास्थ्य-भवन हैं। एक नैनीताल के पास, भुवाली में, दूसरा शिमला के पास धर्मपुर में। जहाँ तक हो सके रोगी का निदान निश्चित होते ही ऐसे स्वास्थ्य-भवन में रखना चाहिए। स्वास्थ्य-भवनों की कमी के कारण अभी तक केवल अमीर लोग ही इन से लाभ उठा सकते हैं।

रोगों से बचने के उपाय

वैसे तो हर एक रोग से बचने के उपाय जानने चाहिएँ परन्तु जिस रोग की कोई औषध मालूम न हो   से बचने के

उपाय जानना तो परमावश्यक है। जो बातें हम नीचे लिखते हैं, उन को काम में लाने से यूरोप, अमेरिका आदि देशों में यह रोग दिन प्रति दिन घटता हुआ दिखाई देता है—

(१) पहिली बात जो याद रखनी चाहिए वह यह है कि यह रोग दुर्बल मनुष्यों को अधिक सताता है। अतः हम को ऐसे काम करने चाहिए जिन से हम हृष्ट-पुष्ट बनें। भारत-हितैषियों का धर्म है कि वे दरिद्रता को दूर करें, बाल-विवाह की कुरीति को देश से निकालें और शिक्षा-प्रणालियों को ऐसा बनावें जिस से विद्यार्थी स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का उल्लंघन न करें।

(२) दूसरी बात यह है कि क्षय-रोगी का बलग़म एक बहुत ख़तरनाक चीज़ है, क्योंकि उस में करोड़ों जीवित कीटाणु रहते हैं, जो दूसरे मनुष्यों के शरीर में पहुँच कर रोग उत्पन्न कर सकते हैं। क्षयी को चाहिए कि वह कभी किसी मकान के फ़र्श और दीवारों पर न थूके, न वह इस प्रकार और ऐसी जगह थूके और खाँसे कि जिस से और लोगों के शरीर, कपड़े या भोजन पर बलग़म की छींटें पड़ें। रोगी के पास एक पीकदान होना चाहिए और यह बलग़म समय-समय पर आग में जला देना चाहिए। जो लोग ख़र्च कर सकते हैं, वह पीकदान में कीटाणुनाशक औषध रख सकते हैं। रोगी काग़ज़ के लिफ़ाफ़ों या थैलियों में भी थूक सकता है और यह थैलियाँ फिर जलाई जा सकती हैं। जब रोगी खाँसे तो मुँह के सामने कपड़ा रक्खे, जिस से आस-पास की वायु अधिक दूषित न होने पावे। जिस कमरे में रोगी रहे, वहाँ जल छिड़क कर झाड़ू लगायी जावे, जिस से धूल उड़ कर वायु में न मिले। रोगी के कपड़ों को रोज़ कुछ समय के लिए धूप में रखना चाहिए जिस से

को घृणा न आवे या उन को किसी प्रकार हानि पहुँचने की सम्भावना न हो।

क्षयी को चाहिए कि वह बलगम को कभी भी न निगले, क्योंकि इस से न केवल उस का रोग बढ़ेगा, बल्कि अंत्र के क्षय रोग होने का भी बहुत डर है।

३—क्षय-रोगी के साथ और मनुष्यों को भोजन न करना चाहिए और न उस का जूठा पानी पीना चाहिए। उस से बरतन अलग रखने चाहिए और भोजन के पश्चात् उबलते हुए जल से धो लेना चाहिए। रोगी को चाहिए कि वह किसी को न चूमे।

४—निदान निश्चित होते ही (या क्षय का संदेह होने ही) रोगी को किसी योग्य चिकित्सक से अपना इलाज कराना चाहिए, जिस से रोग बढ़ने न पावे। अच्छा हो जाने से रोग के कीटाणु मर जाते हैं और रोगी और लोगों के लिए खतरनाक नहीं रहता। जिन लोगों का इलाज नहीं होता, उन लोगों से रोग के फैलने का बड़ा डर रहता है।

जहाँ तक हो सके रोगी को पहाड़ पर स्वास्थ्य-भवन में ले जाना चाहिए।

म्युनिसिपल्टियों को (Municipalities) चाहिए कि ऐसे रोगियों के इलाज का प्रबन्ध करें, जो दरिद्रता के कारण स्वयं इलाज नहीं करा सकते।

५—स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का पालन करना चाहिए। डाक्टरों तथा प्रचारकों का यह कर्तव्य है कि वह स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का सर्वसाधारण में प्रचार करें। बड़े-बड़े शहरों में

स्वास्थ्य सम्बन्धी व्याख्यान समय-समय पर होने चाहिए, स्वास्थ्य समितियाँ और क्षय-रोग-निवारिणी समितियाँ बननी चाहिए, और इन समितियों की ओर से प्रचारक ग्रामों में घूम कर स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों का प्रचार करें।

निम्न लिखित चीज़ें रोगों को दूर करने वाली हैं। इस कारण हम को उन से प्रेम रखना चाहिए:—

१—पवित्र वायु—वायु में धूल, मिट्टी, कूड़ा-करकट, धुआँ, दुर्गंध न हो। सामान्यतः ग्रामों की वायु शहर की वायु से अधिक शुद्ध होती है। शहरों में जङ्गलों की वायु गुंजान मुहल्लों या कारखानों के पास की वायु की अपेक्षा अच्छी होती है। पहाड़ों की वायु बहुत पवित्र होती है।

२—पवित्र पीने की चीज़ें—मदिरा, भँग इत्यादि को अपवित्र समझना चाहिए। जो जल पिया जावे उस में किसी प्रकार का रंग, गंध या अस्वच्छता न हो।

३—पवित्र भोजन—भोजन में मैले-कुचैले हाथ न लगे हों, न वह मैले-कुचैले स्थान में पकाया गया हो। पाकशाला के पास न तो पाख़ाना और न मूत्र-स्थान हों और न उस के पास कूड़ा-करकट डाला जावे। विधिपूर्वक पकाया हुआ भोजन शुद्ध बासनों में परोसा जावे। भोजन करने से पहिले हम को अपना शरीर भी शुद्ध कर लेना चाहिए। जिस स्थान में भोजन खाया जावे वह पवित्र हो और वहाँ किसी प्रकार की दुर्गन्ध, कूड़ा-करकट और मक्खियाँ न हों।

४—सूर्य का प्रकाश—जहाँ तक हो सके मकान की खिड़कियाँ और दर्वाज़ों को खोल कर सूर्य का प्रकाश भीतर आने दें। कपड़ों को, विशेषकर बिस्तर को, रोज़ धूप देनी चाहिए। इस

कहावत को याद रखना चाहिए—"जहाँ प्रकाश नहीं पहुँचता वहाँ डाक्टर अवश्य पहुँचता है।" म्युनिसपल्टियों को (Municipalties) चाहिए कि शहरों में तंग गलियाँ न रहने दें; तंग गलियों में कई-कई मंज़िल ऊँचे मकान बनाने की आज्ञा भी न देनी चाहिए।

५—पूर्ण स्वच्छता।

निम्न लिखित पाँच चीज़ों से सदा डरना चाहिए:—

१—धूल
२—मैल
३—सील
४—अँधेरा
५—वायु संचार की कमी

(१) क्षय-रोग किसे कहते हैं और यह कैसे फैलता है?
(२) यह रोग कितना और क्यों भीषण हो जाता है?
(३) इस से बचने के क्या उपाय हैं?

नाटक

नाटक शब्द नट्-धातु से बना है। 'नट्' नाचने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। अँग्रेज़ी में नाटक को ड्रामा कहते हैं। ड्रामा के लिए संस्कृत में नाटक की अपेक्षा 'रूपक' शब्द अधिक उपयुक्त है। ड्रामा का मूल-शब्द इसी अर्थ का द्योतक है। ड्रामा उन रचनाओं को कहते हैं, जिन में अन्य लोगों के क्रिया-कलापों का अनुकरण इस प्रकार किया जाता है कि मानो वे ही काम कर रहे हों। जूलियस सीज़र के नाटक में कोई व्यक्ति उस का

इस प्रकार अनुकरण करता है, मानो वही जूलियस सीज़र है।
दूसरों का अनुकरण करना मनुष्य-मात्र का स्वभाव है। बालक
अपने माता-पिता का अनुकरण करता है। छोटे लोग बड़े
लोगों का अनुकरण करते हैं। नाटकों की उत्पत्ति मनुष्यों के
स्वभाव से ही हुई है। एक बात और है। नाटक में सि
क्रिया-कलापों का ही अनुकरण नहीं होता, मनुष्यों की हृदय-
भावनाओं का भी अनुकरण किया जाता है। यह तभी सम्
है, जब हम दूसरों के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझ
यही सहानुभूति है। यह भाव भी स्वाभाविक है। सच
जाय तो इसी के आधार पर मानव-समाज स्थित है।
यह न रहे तो मानव-समाज छिन्न-भिन्न हो जाय। अ
हमारे कहने का तात्पर्य यही है कि नाटकों का मूल-रूप म
के अन्तर्जगत् में विद्यमान है। बाह्य-जगत् में उस का वि
क्रमशः हुआ है।

नाटक में नट दूसरे के कार्यों का अनुकरण कर
इसी को अभिनय कहते हैं। यह एक कला है। मानो के
करण को कला कहते हैं। किसी भी कला में निपुण
करने के लिए विशेष योग्यता की आवश्यकता है।
यद्यपि अनुकरण करने की प्रवृत्ति सभी में होती है,
नाट्य-कला में दक्ष होना सब के लिए संभव नहीं।

नाटक और नाट्य-कला में परस्पर सम्बन्ध है।
लिए नाट्य-कला आवश्यक है। परन्तु नाटक तो
कला है, जिस की उत्पत्ति मनुष्यों के अन्तःकरण में
बाह्य-जगत में उस को प्रत्यक्ष कर दिखाना नाट्य-
काम है। नाटक की रचना तो काव्य में भी हो

दृश्य-काव्य कहते हैं। नाटक ऐसा काव्य है, जिस में हम कवि की कुशलता का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकते हैं। यद्यपि रंग-भूमि में कवि नहीं आता, तथापि नटों के द्वारा हम उसी की वाणी सुनते हैं। नाट्य-शाला तो कवि का शरीर है, और उस में किया जाने वाला अभिनय है उस की वाणी।

कुछ समय पहले लोगों की यह धारणा हो गई थी कि भारतीय नाटकों में ग्रीस देश के नाटकों का अनुकरण किया गया है। इस की पुष्टि के लिए हिन्दू-नाटकों में प्रयुक्त यवनिका शब्द का उल्लेख किया जाता था; यद्यपि अभी तक इसी का निश्चय नहीं हुआ कि ग्रीक लोग यवनिका उपयोग करते भी थे या नहीं।

लोगों का यह समझना ठीक नहीं कि भारत ने ग्रीक-नाटकों का अनुकरण किया है। इस में सन्देह नहीं कि ग्रीस और भारत ने एक दूसरे से बहुत कुछ लिया दिया है, पर इस का मतलब यह नहीं कि एक ने दूसरे का अनुकरण किया है। प्रतिभा कोरा अनुकरण नहीं करती। वह अभीष्ट वस्तु को ग्रहण कर उसे अपना लेती है। न तो ग्रीस ने भारत का अनुकरण किया और न भारत ने ग्रीस का। दोनों ने अपनी-अपनी प्रतिभा से अपने-अपने साहित्य की वृद्धि की है। ग्रीक और भारतीय नाटकों में परस्पर समता ही नहीं है। हिन्दू नाटकों में ग्रीक-नाटकों की समानताओं की उपेक्षा की गई है। ग्रीक-भाषा में दुःखान्त नाटक हैं, परन्तु हिन्दुओं के साहित्य में एक भी ऐसा नाटक नहीं है। इतना तो हम अवश्य कहेंगे कि हिन्दू-नाटकों के विदूषक को इंगलैंड की रानी एलिज़बेथ के समय के नाटकों में तथा रोमन नाटकों में भी, 'क्लाउन' का

सब से प्राचीन नाट्य-शास्त्र भरत मुनि का ही है। पाणिनी के समय में भी नाट्य-शास्त्र प्रचलित थे। उन्हीं ने दो आचार्यों का उल्लेख किया है। शिलालिन और कृशाश्व। पातंजलि के समय में भी नाटक खेले जाते थे। उन के महा-भाष्य में 'कंस-वध' और 'बलि-बंधन' के खेलेजाने का साफ़-साफ़ उल्लेख है।

हिन्दू-नाट्य-साहित्य का प्राचीनतम रूप देखने के लिए हमें वेदों की आलोचना करनी चाहिए। ऋग्वेद के कई सूक्तों में कुछ सम्वाद हैं, जैसे यम और यमी का सम्वाद, पुरुरवा और उर्वशी का सम्वाद इत्यादि। इन की गणना हम नाटकों में कर सकते हैं। पुरुरवा और उर्वशी का संवाद ही पुराणों में, कथा रूप में, विस्तार पूर्वक वर्णित किया गया है और उसे ही कालिदास ने नाटक का रूप दिया है। जान पड़ता है, पहले-पहल नाटकों में सिर्फ़ संगीत ही रहता था। पीछे से उन में संवाद (अर्थात् भाषण या कथोपकथन) जोड़े गये हैं। फिर, इस के अनन्तर, कदाचित् उन में कृष्ण-चरित का समावेश किया गया है। कुछ भी हो, इस में तो सन्देह नहीं कि प्राचीन काल में ही नाटकों का बहुत कुछ अभिनय होने लगा था।

हिन्दू-नाटककार कार्यों और विचारों की एकता का भली प्रकार ध्यान में रखते थे। उन के ममंवाद ने सभी नाटकों की घटनाओं को कार्य-कारण की शृङ्खला में बाँध रक्खा है। हिन्दू-साहित्य में संयोगान्त और वियोगान्त नाटक अलग-अलग नहीं हैं। उन में हर्ष और शोक के भाव मिश्रित रहते हैं। रंग-भूमि में अत्यन्त शोकोत्पादक अथवा विकार-वर्द्धक दृश्य नहीं दिखलाये जाते थे; क्योंकि ऐसा करने से मन विकृत हो जाने का डर रहता है। शोक की उपेक्षा भी नहीं की जाती थी; पर

बल इस बात पर दिया जाता था कि शोक का सामना त्याग और आत्मबल से किया जाना चाहिए। संसार जिन नियमों से बँधा है, वे हम लोगों के लिए श्रेयस्कर हैं।

प्रत्येक नाटक के आरंभ और अन्त में आशीर्वादात्मक श्लोक रहते हैं। उन का विषय प्रायः धार्मिक-ग्रन्थों से लिया जाता है। ग्रीक नाट्यकार, जर्मन कवि और शेक्सपियर आदि चरित्र-चित्रण में ही अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं। उन का विषय है मनुष्य। हिन्दु-नाट्यकारों का विषय है प्रकृति। उन के लिए प्रकृति ही यथार्थ में शिक्षा देने वाली है। यही कारण है कि हिन्दु-नाटक प्रकृति सम्बन्धी उत्सवों में खेले जाते थे, अधिकतर वसन्त के उत्सव में, जब विश्व-प्रकृति का नव-जीवन आरम्भ होता है। बिना दुःख के, बिना तपस्या के पवित्रता नहीं आती, बिना आत्म-त्याग के आत्मोन्नति नहीं होती। हिन्दु-नाटकों में यही भाव स्पष्ट कर के दिखाया गया है।

प्रश्न

(१) नाटक किसे कहते हैं ?

(२) दृश्य-काव्य के क्या अर्थ हैं ?

(३) हिन्दु-नाटक और यूनानी नाटकों में क्या अंतर है ? इन के [illegible] में क्या अंतर रहता है ?

(४) हिन्दु-नाटकों का प्राचीन इतिहास बताओ ?

दानवीर सर गङ्गाराम

सर गंगाराम

जन्म और बाल्यावस्था

सर गंगाराम का जन्म ई० सन् १८५१ में पंजाब के शेख़ूपुरा ज़िले के मंगतवाला गाँव के एक गुरुद्वारा में हुआ था। इस गुरुद्वारा को आप ने पीछे से पक्की और बड़ी इमारत का रूप दे दिया था, जो आज तक आप के जन्मस्थान की स्मृति दिला रहा है। आप के पिता का नाम लाला दौलतराम था, जो अमृतसर में कोर्ट इन्स्पेक्टर थे। लाला साहब बड़े धर्मात्मा और सत्संगी पुरुष थे। साधु-महात्माओं की सेवा-टहल करने का उन्हें बड़ा शौक था। एक महात्मा ने प्रसन्न हो उन्हें आशीर्वाद दिया था कि, "आप का पुत्र (गंगाराम) अपने समय का विक्रमादित्य होगा।" महात्मा का यह आशीर्वाद बिल्कुल सत्य सिद्ध हुआ।

शिक्षा

बाल्यावस्था में ही इन के पिता ने इन्हें अमृतसर के एक स्कूल में भर्ती करा दिया था। बुद्धि इन की बड़ी तीक्ष्ण थी और पढ़ने-लिखने में परिश्रम भी ख़ूब करते थे। गणित में विशेष रुचि थी। कई बार जब स्कूल की ऊँची श्रेणियों के विद्यार्थी गणित का प्रश्न हल नहीं कर पाते थे, तब गंगाराम उसे सहज ही कर देते। इस विलक्षण बुद्धि के कारण ही मैट्रिकुलेशन परीक्षा आप ने पाँच ही वर्ष में पास कर ली। उस के बाद लाहौर के सरकारी कालेज में भर्ती हुए। एक बार इन्हें वहाँ के इंजीनियर के दफ़्तर में जाने का अवसर मिला। इंजीनियर महाशय वहाँ नहीं थे, इसलिए उन की लचकीली कुर्सी का आनन्द

लेने के लिए आप वहाँ आकर बैठ गये। इतने में इंजीनियर साहब आ गये और उन्हों ने अपनी कुर्सी पर से इन्हें उठा दिया। बालक गंगाराम को यह बहुत अखरा। उन्होंने अपने मन में दृढ़ संकल्प किया कि, "मैं इसी कुर्सी पर आकर बैठूँगा।" उन का यह निश्चय पूरा हुआ। उन्हों ने उन्हीं इंजीनियर से आकर चार्ज लिया, जिन्हों ने उन्हें कुर्सी पर से उठाया था।

सरकारी कालेज की पढ़ाई समाप्त कर आप रुड़की के इंजीनियर-कालेज में दाखिल हुए। वहाँ से आप बड़ी सफलता के साथ उत्तीर्ण हुए।

सरकारी नौकरी

परीक्षा समाप्त करते ही आप लाहौर में सन् १८७३ में सहायक इंजीनियर नियुक्त किये गये। लाला गंगाराम बड़ी मेहनत और लगन से अपना कर्त्तव्य पालन करते थे, जिस से आप के अफ़सर सदा प्रसन्न रहते थे। जब १८८५ में राजकुमार वेल्स, जो पीछे से महाराज एडवर्ड हुए, भारत में पधारे थे, उस समय लाहौर में उन के स्वागत का सब प्रबन्ध इन्हीं नवयुवक इंजीनियर के सुपुर्द किया गया था। आप की योग्यता से प्रसन्न हो कर सरकार ने सन् १९०३ के देहली दरबार की सम्पूर्ण व्यवस्था का अध्यक्ष आप ही को नियुक्त किया। उन दिनों भारत के वाइसराय लार्ड कर्ज़न थे। उन की इच्छा थी कि दरबार इतना भव्य हो कि वह इतिहास में चिरस्मरणीय रहे। यह काम इतना सहज नहीं था, पर लाला गंगाराम ने अपने कठोर श्रम, घोर परिश्रम और विलक्षण प्रतिभा से इस का प्रबन्ध इस रीति से किया कि लार्ड कर्ज़न देख कर हैरान हो गये।

१९११ के दिल्ली दरबार का आयोजन भी आप ही की देख-रेख में हुआ था। आप की इन सेवाओं से प्रसन्न हो सरकार ने आप को "राय बहादुर" की उपाधि से सम्मानित किया। १९०३ में रायबहादुर गंगाराम को पेन्शन मिली और तब पटियाला रियासत ने आप को प्रधान इञ्जीनियर नियुक्त किया। यहाँ आप १९११ तक रहे और उस के बाद नौकरी से सदा के लिए अवसर प्राप्त कर लिया। इसी समय आप ने इञ्जीनियरी पर एक पुस्तक लिखी, जो इतनी पसन्द की गई कि अभी तक इञ्जीनियरिंग-कालेज के पाठ्य-क्रम में है।

वैज्ञानिक-कृषि की ओर

अब आप ने कृषि की उन्नति की ओर ध्यान दिया। आप की यह प्रबल अभिलाषा थी कि जिस प्रकार यूरोप और अमेरिका में वैज्ञानिक साधनों द्वारा कृषि को उन्नत किया जा रहा है, उसी प्रकार भारत में भी ये साधन काम में लाये जायँ। परन्तु इस देश में वे यन्त्र सर्वथा अप्राप्य थे। इस के अतिरिक्त अन्य भी कई प्रकार की कठिनाइयाँ थीं। परन्तु लाला गङ्गाराम इन विपरीत दशाओं में घबराने वाले नहीं थे। उन्हों ने धैर्य, साहस, उत्साह आदि वीरोचित गुण तो माता के दूध के साथ पिये थे। फिर इस पर उन की ईश्वर-प्रदत्त विलक्षण प्रतिभा। फलतः उन्हों ने कमर कस अपनी बीस बीघा ज़मींदारी में आधुनिक यन्त्रों द्वारा कृषि-सम्बन्धी वैज्ञानिक परीक्षण प्रारम्भ कर दिये। इस में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। इस से उन का उत्साह द्विगुणित हो गया।

पञ्जाब सरकार के पास उकाड़ामण्डी ज़ि० मिण्टगुमरी में ८०बीघा ज़मीन ऐसी थी, जो पानी की सतह से ऊँची होने के

कारण खेती के लिए एकदम निकम्मी समझी जाती थी। आप ने यह ज़मीन सरकार से पट्टे की शर्तों पर ले कर और विदेश से यन्त्र मँगवा कर वहाँ भाप और बिजली-द्वारा इस प्रकार जल चढ़ाया कि आज उसी बंजर ज़मीन से हज़ारों रुपयों की पैदावार हो रही है। सरकार आप की इस सफलता से चकित हो गई और प्रसन्न हो कर आप ही को इस ज़मीन का स्वामी बना दिया।

उन्हीं दिनों सन् १९१४ में अँग्रेज़ों का जर्मनी से युद्ध छिड़ गया था। विदेश का सभी माल मँहगा हो गया और मशीनें तो विशेष रूप से मँहगी हो गई थीं। उधर पंजाब के तत्कालीन लाट सर ओडवायर ने ज़मीन देने का प्रलोभन दे-दे कर जिन हिन्दुस्तानियों को फौज में भर्ती किया था, उनमें से भी बहुतेरे युद्ध समाप्त होने के कारण वापिस देश को लौट रहे थे। इन सिपाहियों के लिए खेती-योग्य ज़मीनों की कमी मालूम होने लगी। बंजर ज़मीन इस योग्य नहीं थी कि वह इनाम में दी जा सके। इस समय पञ्जाब सरकार बड़ी शशोपञ्ज में थी। उसी समय ओडवायर साहब ने श्री गंगाराम से परामर्श किया। आप ने सरकार से बंजर ज़मीन ठेके पर ले उस में युद्ध से वापिस आये सिपाहियों को आबाद किया। इस ज़मीन को अपनी बुद्धिमत्ता और परिश्रम से वैज्ञानिक यन्त्रों की सहायता से हरा-भरा कर दिया। आपने सरकार से जो अन्तिम ठेका लिया था, वह ८० हज़ार एकड़ व १२५ मुरब्बा मील ज़मीन का था, जिस पर ३० लाख रुपया ख़र्च कूता गया था। आप ने इस ठेके में भी पूर्ण सफलता प्राप्त की। इस प्रकार आप ने अपने व्यवसाय, उद्योग तथा साहस से भारत के कृषि-क्षेत्र में एक

हल-चल मचा दी, और इस देश के ज़मीदारों के सामने, कृषि द्वारा ही कितना धन कमाया जा सकता है, इस का एक उज्ज्वल आदर्श उपस्थित कर दिया। "सर गंगाराम-फ़ार्म" इस समय न केवल पंजाब में, अपितु संपूर्ण भारत में सब से उत्तम और अग्रगण्य खेत समझे जाते हैं। इञ्जीनियरी-विद्या में तो आप का सिक्का पहले ही जम चुका था। अब कृषि-विद्या में भी देश-विदेश के विद्वानों और सरकार को भी आप का लोहा मानना पड़ा। आप की इस विलक्षण प्रतिभा और सफलता से प्रसन्न हो सरकार ने आप को सर और सी. आई. ई. तथा एम. वी. ओ. की उपाधियों से सम्मानित किया।

सन् १९२५ में भारत सरकार ने सर गंगाराम को इम्पीरियल बैंक के उत्तरीय क्षेत्र का अध्यक्ष नियुक्त किया। ऐसी प्रतिष्ठा बहुत कम भारतीयों को मिली है। सन् १९२७ में सरकार ने कृषि पर एक राजकीय कमीशन नियुक्त किया, जिस का उद्देश्य संपूर्ण भारत और ब्रह्मा देश में दौरा कर कृषि की वर्त्तमान अवस्था और उस की उन्नति के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट देना था। सर गंगाराम भी इस कमीशन के एक मेम्बर थे। इसी कमीशन के कार्य के सम्बन्ध में आप विलायत गये थे। वहीं पर १० जुलाई सन् १९२७ की रात को हृदय की गति बन्द हो जाने के कारण आप का देहान्त हो गया। आप के सुपुत्र रायबहादुर लाला सेवकराम भी आप के साथ थे। हिन्दू रीति के अनुसार आप का लण्डन में ही अन्त्येष्टि संस्कार किया गया। उस समय भारत-सचिव, पार्लियामेंट के कई सदस्य, सरकारी अफ़सर, कृषि-कमीशन के अध्यक्ष और मेम्बर तथा वहाँ रहने वाले कई भारतीय भी उपस्थित थे।●

सर गंगाराम के स्वर्गवास का समाचार इस देश-निवासियों ने बहुत शोक से सुना। देश के सभी पत्रों में सर गंगाराम के वियोग पर भाव-पूर्ण लेख लिखे और स्थान-स्थान पर शोक-सभायें की गईं। इस शोक में राजा और प्रजा दोनों ही सम्मिलित थे। भारत के वायसराय, पंजाब के लाट तथा अन्य बड़े-बड़े सरकारी अफ़सर और महात्मा गांधी, लाला लाजपतराय, पं० मदनमोहन मालवीय, सर सी० पी० राय इत्यादि देश के नेताओं ने भी इस अवसर पर हार्दिक शोक प्रकट किया।

सर गंगाराम का स्वर्गवास ७६ वर्ष की आयु में हुआ। आप ३ पुत्र छोड़ गये हैं, जिन के नाम क्रमशः रायबहादुर ला० सेवकराम, ला० बालकराम तथा ला० हरिराम हैं। तीनों ही पारिवारिक सुख और समृद्धिपूर्ण हैं तथा बैरिस्टरी पास हैं।

परोपकार और प्रचुर दान

भारतवर्ष के और विशेषतः हिन्दू-जाति के इतिहास में सर गंगाराम का नाम कृषि और स्थापत्य-विद्या (Engineering) के विलक्षण प्रतिभाशील, अध्यवसायी, अगतम विद्वत्ता और आविष्कार के करने के कारण शायद इतना चिरस्मरणीय नहीं होगा, जितना उस महा पुरुष के परोपकारी, अनाथ और विधवाओं के रक्षक, निर्धनों के पालक, मातृ-शक्ति के उपासक, छात्रों के परम-सहायक, और समाज-सुधारक तथा उदार दान-शील होने के कारण इतिहास में अमिट और सुनहरी अक्षरों में प्रकाशमान रहेगा। इन के विख्यात दानों और परोपकारों का संक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है—

वैसे तो सन् १६१४ ई० और शायद इस से पूर्व भी सर गंगाराम ने प्रकट व अप्रकट रूप से दान देना प्रारम्भ कर दिया था, पर अप्रैल १६२४ में "सर गंगाराम-ट्रस्ट" नाम से एक रजिस्ट्री-शुदा ट्रस्ट स्थापित कर दिया और सब से इसी द्वारा आप की स्थापित भिन्न-भिन्न संस्थाओं और दानों को संचालित और नियमित किया गया। इस ट्रस्ट के नाम आप ने अपने जीवन-काल में और पश्चात् वसीयत द्वारा कई मकान, जायदाद और कई लाख रुपया नक़द भी दिया। यह सब मिला कर इस समय आध करोड़ रुपये से कुछ ऊपर है, जिस से लगभग डेढ़ लाख रुपया सूद वार्षिक आता है और इसी रकम से सब संस्थाओं का, जिन का विस्तृत ब्यौरा आगे दिया जायगा, काम चलता है। सर गंगाराम के देहावसान से पूर्वकाल तक निम्न-लिखित ट्रस्टी थे। (१) प्रधान सर गंगाराम (२) अवैतनिक मन्त्री लाला लाजपतराय साहनी। मेम्बर, (३) रायबहादुर ला० सेवकराम बरिस्टर एम. एल. सी. (४) ऑनरेबुल जस्टिस बख्शी टेकचन्द, जज-हाईकोर्ट, लाहौर (५) आनरेबुल सरदार जोगेन्द्रसिंह कृषि-मन्त्री पंजाब-सरकार (६) रायबहादुर दीवान बद्रीदास एम. ए. एल-एल. बी. वकील लाहौर (७) राय-बहादुर ला० रंगीलाल पैंशन और डिस्ट्रिक्ट जज (८) डाक्टर ए. सी. आरोड़ा, हेल्थ-आफ़िसर (९) ला० बालकराम बैरिस्टर (१०) ला० मन्नूलाल (११) डा० बी० जी० साहनी। सर गंगाराम के स्वर्गवास के पश्चात् उन के ज्येष्ठ पुत्र रायबहादुर ला० सेवकराम इस ट्रस्ट के प्रधान चुने गये हैं। इस ट्रस्ट के आधीन निम्नलिखित संस्थायें कार्य कर रही हैं, जिन में से प्रत्येक का प्रबन्ध अलग-अलग उप-समिति-द्वारा होता है।

(१) विधवा-विवाह-सहायक-सभा—सर गंगा
अपने जीवन में सब से अधिक प्रिय और इष्ट कोई का
तो वह विधवा-विवाह था। पं० ईश्वरचन्द्र विद्यास
निस्सन्देह इस सुधार के प्रवर्त्तक थे। उन्हों ने ही आज
कई वर्ष पूर्व घोर विरोध, विपत्ति और कष्टों से तनिक भ
घबरा कर इस आन्दोलन का बीज बोया था। परन्तु
बीज को वृक्ष-रूप देने और पूर्ण सफल बनाने का श्रेय
किसी को दिया जा सकता है, तो वह सर गंगाराम को ही
हिन्दू-विधवाओं की दुर्दशा, उन पर दिन-रात होने व
अत्याचार और उन की विशाल संख्या को देख आप का ह
बहुत पसीज गया और जब आप अभी सरकारी नौकरी
ही थे, आप ने इस समस्या को यथा-शक्ति हल करने का प्र
किया। इस प्रश्न पर बहुत गहराई के साथ विचार करने प
आप इस परिणाम पर पहुँचे कि विधवा-विवाह का प्रचा
करने से विधवाओं की वर्त्तमान दुर्दशा, जिस में अधिकां
ऐसी विधवायें हैं, जिन की आयु ६ मास से लेकर २०-२२ व
तक की है, बहुत अंश तक सुधर जायगी। आप के सामने
जब किसी विधवा बहन की करुणा-जनक और हृदय-वेधक
घटना उपस्थित होती, तो आप प्रायः रो उठते थे। सन्
१९२६ के दिसम्बर मास में कृषि-कमीशन के साथ जब आप
कलकत्ता पधारे, तब इन पंक्तियों के लेखक को आप की सेवा में
उपस्थित होने का सौभाग्य मिला। इस ने जब बंगाल प्रान्त की
विधवाओं की दुर्गति का कुछ वर्णन आप से किया और नव-
द्वीप नामक बंग प्रान्त के तीर्थ में मातृ-मन्दिरों की आड़ में होने
वाले दुराचार, भ्रूण-हत्यायें, शिशु-हत्यायें इत्यादि की
का वर्णन किया, उस समय आप को इतना तीव्र

आप की आँखों से अश्रुधारा बहने लगी। सर गंगाराम प्रायः कहा करते थे कि पहले उन की आर्थिक दशा बहुत साधारण थी, परन्तु जब से उन्होंने विधवाओं के प्रश्न को हाथ में लिया तभी से उन की आर्थिक उन्नति होने लगी। वे अपनी विशाल विस्तृत सम्पत्ति को विधवाओं के आशीर्वाद का ही फल बताया करते थे। एक बार लन्दन में एक मोटर दुर्घटना में आप मरते-मरते बचे, तब आप ने भारत में एक मित्र को लिखा था कि परमात्मा ने शायद विधवाओं की कुछ और सेवा करने के लिए ही मुझे मौत के मुँह से बचाया है। महात्मा गांधी ने इसीलिए, आप को ठीक ही विधवाओं का रक्षक और मित्र कहा था।

इस ट्रस्ट की सब से प्रथम और प्रधान संस्था विधवा-विवाह सहायक-सभा ही है, जिस की नियमपूर्वक स्थापना सन् १६१४ के दिसम्बर में हुई थी। इस सभा का एकमात्र उद्देश्य विधवा-विवाह का प्रचार और उसे उत्साहित करना है। सन् १६१४ से आज तक इस सभा द्वारा ३० हज़ार के लगभग विधवा-विवाह हुए। जिन में अधिकांश ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ, राजपूत, वैश्य इत्यादि उच्च जाति में हुए हैं। इस सभा से सम्बद्ध ७०० शाखाएँ सम्पूर्ण भारत में हैं। इस सभा के उप-कार्यालय पटना, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास प्रान्तीय केन्द्रों में हैं और इसी सभा की ओर से लाहौर, मथुरा, हरिद्वार, अजमेर, मद्रास स्थानों में विधवा-आश्रम हैं, जहाँ पर विवाह की इच्छा करने वाली विधवाओं को सभा के खर्च पर रक्खा व पाला जाता है। गर्भवती और गुण्डों के हाथों से बचाई हुई विधवाओं को भी इन आश्रमों में आश्रय दिया

जाता है। सभा के अधीन २० वैतनिक उपदेशक सम्पूर्ण भारत में काम कर रहे हैं। सभा की ओर से हिन्दी, उर्दू, अँग्रेज़ी, बँगला, मराठी, तामिल, तेलग, कनाडी, गुरुमुखी इत्यादि समस्त प्रान्तीय भाषाओं में प्रतिवर्ष विधवा-विवाह सम्बन्धी साहित्य लाखों की संख्या में बिना मूल्य वितरण किया जाता है। सभा की ओर से उर्दू, अँग्रेज़ी में दो मासिक-पत्र प्रकाशित होते हैं और हिन्दी में शीघ्र ही एक मासिक-पत्र निकने वाला है। सभा का प्रधान कार्यालय मेकलेगन रोड लाहौर में है।

(२) सर गंगाराम फ्री-अस्पताल—लाहौर नगर की घनी आबादी के बीच वच्छोवाली मोहल्ले में सन् १९२१ में सर गंगाराम ने १,३१,५००) रु० की लागत से इस अस्पताल की स्थापना की। इस की लोक-प्रियता का इसी से अनुमान किया जा सकता है कि इस में आने वाले दैनिक रोगियों की संख्या लाहौर के सरकारी अस्पताल से भी अधिक होती है। इसी-लिए यह अस्पताल पंजाब प्रान्त के सर्वोत्तम अस्पतालों में गिना जाता है। यहाँ पर बिना किसी जाति-भेद के सब रोगियों को मुफ्त दवा दी जाती है। इस में सुयोग्य असिस्टेन्ट सर्जन, एक लेडी डाक्टर और एक धाई के अतिरिक्त कई अवैतनिक डाक्टर भी हैं। रोगियों का अस्पताल के अन्दर रख कर भी इलाज किया जाता है।

(३) हिन्दू-विद्यार्थी-सहायक-समिति—ब्रिटिश भारत में रहने वाले हिन्दू विद्यार्थियों की सहायता के लिए सर गंगाराम ने सन् १९२२ में इस समिति की स्थापना की थी। निर्धन और सहायता के योग्य विद्यार्थियों को इस समिति द्वारा

कानून के अतिरिक्त अन्य व्यावहारिक शिक्षा स्वदेश में ही प्राप्त करने के लिए वृत्ति ऋण के रूप में प्रतिवर्ष दी जाती है। यह सहायता निम्न संस्थाओं में प्रविष्ट होने वाले छात्रों को विशेष रूप से दी जाती है—रुड़की कालेज, रसूल (पंजाब) का इंजिनीयरिंग स्कूल, अमृतसर, लुधियाना और दिल्ली के मेडिकल स्कूल, कालेज, पशु-चिकित्सा कालेज लाहौर, कृषि-कालेज लायलपुर, जंगलात कालेज देहरादून, हेली-कामर्स कालेज लाहौर, सनातन-धर्म-कामर्स कालेज कानपुर, माइनिंग कालेज धनबाद, ट्रेनिंग कालेज लाहौर। सन् १६२८ तक ४८ हज़ार रुपये के लगभग तक की छात्र-वृत्तियाँ इस समिति द्वारा दी जा चुकी हैं।

(४) बिज़नेस ब्यूरो और लायब्रेरी—हिन्दुओं में बढ़ती हुई बे-रोज़गारी दूर करने के उपायस्वरूप उन की दस्तकारी और वाणिज्य की ओर रुचि पैदा करने के लिए सर गंगाराम ने १६१३ में इस संस्था की स्थापना की थी। इस पुस्तकालय में उपन्यास, क़िस्से-कहानी और इतिहास की पुस्तकें नहीं हैं, अपितु विविध कला-कौशल, व्यापार, दस्तकारी, वाणिज्य इत्यादि पर भिन्न-भिन्न देशों की उत्तमोत्तम—तथा बहुधा अन्य पुस्तकालयों में दुष्प्राप्य—पुस्तकें, मासिक-पत्र और समाचार पत्र ही रक्खे जाते हैं। इस समय इस पुस्तकालय में २८०० उपर्युक्त प्रकार की पुस्तकें हैं और ७० से अधिक उद्योग-धन्धे और शिल्प-कला-सम्बन्धी पत्र, अमेरिका, यूरोप, और भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों से मँगवाये जाते हैं। तथा देश-विदेश की मुख्य व्यापारी मण्डियों के भाव-निर्ख भी मँगवाये जाते हैं। इस संस्था-द्वारा कई युवकों को

अच्छा लाभ पहुँचा है और इन में से कई सुखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

(५) **अपाहिज आश्रम**—लाहौर में रावी रोड पर १५००००) रुपये की लागत से १३६ कनाल घेरे में अप्रैल १९२६ में सर गंगाराम ने इस आश्रम की स्थापना की थी, जिस का उद्देश्य यह है कि हिन्दुओं के ऐसे स्त्री-पुरुष और बच्चे, जो अत्यन्त वृद्धावस्था व शारीरिक दोष व अनाथ होने के कारण अपना निर्वाह नहीं कर सकते, उन्हें इस आश्रम में खाना-कपड़ा इत्यादि देकर यहाँ रक्खा जाय। इस समय आश्रम में १५० व्यक्तियों के रहने योग्य स्थान है। प्रत्येक अपाहज को एक चारपाई, एक सन्दूक, एक स्टूल, बिछौना, लोटा, पहनने को एक-एक जोड़ा कपड़ा तथा अन्य आवश्यक सामान दिया जाता है। आश्रम के बीच एक बड़ा बाग़, मैदान और एक कूप भी है। इस समय आश्रम में २० पुरुष ४ स्त्री और १ बालक है। इन में से ७ अन्धे, १ लँगड़ा बालक और १ बहरा-गूँगा है। बाज़ार में पेशेदार भीख माँगने वालों को इस आश्रम में प्रविष्ट नहीं किया जाता।

सर गंगाराम की वसीयत के अनुसार इसी आश्रम में आप की एक सुन्दर समाधि बनवाई गई है, जिस का उद्घाटन गत बैसाख मास में पंजाब-गवर्नर ने भारी जनता के सम्मुख किया था। उस दिन यहाँ पर बड़ा भारी मेला लगा था। जिस में हजारों दरिद्रों को भरपेट भोजन कराया गया था। बैसाख की प्रथम तिथि को हर साल यह मेला इसी जगह लगा करेगा।

(६) दस्तकारी की दूकान—हिन्दू विधवायें और निर्धन परिवारों की स्त्रियाँ घरों में जो सामान तैयार करती हैं, उसे सुभीते के साथ बेच नहीं पातीं। इस से अनुत्साहित हो वे बहुधा यह धन्धा छोड़ देती हैं अथवा अत्यन्त कठिनता के साथ कुछ कमा सकती हैं। सर गंगाराम ने यह कष्ट दूर करने के लिए मई १९२६ में १० हज़ार रुपये की पूँजी से यह दूकान खोली। इस का प्रधान उद्देश्य यह है कि हिन्दू विधवायें और निर्धन परिवारों की स्त्रियाँ, जो सामान तैयार करें, उसे कुछ मुनाफ़ा दे, ख़रीद कर फिर बाज़ार में लागत दाम पर बेचा जाय। हाथ के धन्धों के लिए जो मशीन व कच्चा सामान चाहिए वह भी कम दाम में इस दूकान से बेचा जाता है। फिर इस दूकान के अधीन एक विशाल कला-भवन सर गंगाराम ने १८८२००) रुपये की लागत से लोअर माल पर तैयार करा पंजाब सरकार को इस उद्देश्य से दे दिया कि उस में हिन्दू-विधवाओं को शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाय। इस सदन के साथ एक दस्तकारी का स्कूल भी है, जो विधवायें यहाँ शिक्षा पाती हैं, उन्हें इस सदन में ही रहना पड़ता है और प्रत्येक को १२ रुपये मासिक छात्र-वृत्ति भी दी जाती है। इस समय सदन में ८३ विधवायें हैं। इस संस्था द्वारा अभी तक ८७ विधवायें शिक्षित और ट्रेण्ड होकर सरकारी और ग़ैर सरकारी स्कूलों में पढ़ा रही हैं।

(२) लेडी मेनयार्ड दस्तकारी स्कूल—(हिन्दू-सिक्ख स्त्रियों और बालिकाओं के लिए) सन् १९२३ में सर गंगाराम ने ७७०००) रुपये की लागत से जौड़ा मोरी मोहल्ले में एक बड़ी इमारत बनवा कर पंजाब सरकार को उस में दस्तकारी-

स्कूल चलाने के लिए दे दी। इस में भिन्न-भिन्न प्रा
बालिकायें और स्त्रियाँ दस्तकारी सीखती हैं, ताकि वे
गृह-पत्नी बन अपना निर्वाह स्वयं कर सकें। काम सिख
लिए सुयोग्य अध्यापिकायें इस स्कूल में हैं। यहाँ पर
भी प्रकार की फ़ीस नहीं ली जाती।

(३) हेली व्यापार-महाविद्यालय—लाहौर में १६०
रुपये की लागत से सर गंगाराम ने इस कालेज को
१९२७ में स्थापित किया था, जिस का प्रधान उद्देश्य व्यापा
की शिक्षा देना है। सर गंगाराम जब जून १९२७ में
कमीशन के साथ इँगलैण्ड जाने वाले थे, उस से कुछ दि
पूर्व ही पंजाब के तत्कालीन लाट साहब सर मालकम हेली
इस संस्था का उद्घाटन करते हुए ये ऐतिहासिक वाक्य क
थे—"सर गंगाराम ने वीरों की भाँति कमाया है और महा-
त्माओं की भाँति दिया है।"

इन उपर्युक्त तीनों संस्थाओं की इमारतें ट्रस्ट के अधीन हैं
और पंजाब सरकार को ये संस्थायें चलाने के वास्ते दे दी
दी गई हैं। यदि सरकार इन संस्थाओं को बन्द कर दे तो ये
तीनों इमारतें ट्रस्ट को वापिस मिल जायँगी।

(४) कृषि-विज्ञान में गवेषणा करने के लिए २५०००) रुपये
की एक छात्र-वृत्ति तथा दो-एक और इसी प्रकार की विज्ञान-
सम्बन्धी छात्र-वृत्तियाँ सर गंगाराम ने पंजाब विश्वविद्यालय
को दी हुई हैं।

(५) उपर्युक्त दानों के अतिरिक्त सर गंगाराम प्रतिवर्ष
हज़ारों रुपया गुप्त-दान भी दिया करते थे, जिस का विस्तृत

ब्यौरा देना कठिन है। आप प्रतिवर्ष जाड़ों के मौसम में हज़ारों निर्धन छात्रों आदि में कम्बल, लोई, रज़ाई तथा अन्य गरम कपड़े मुफ़्त बँटवाया करते थे। कई निर्धन परिवारों को अपनी जेब से बिना उन के जाने गुप्त सहायता दिया करते थे। देश में जहाँ कहीं भी दुर्भिक्ष, अकाल, जल-प्लावन इत्यादि कोई आपत्ति आती थी, तो आप निस्संकोच वहाँ सहायता भेजते थे। सन् १६२५ में कोहाट के दंगे में अत्याचार-पीड़ित हिन्दुओं के लिए आपने हज़ारों रुपये का अन्न और वस्त्र भेजा था। आप के पास जो भी माँगने जाता कभी ख़ाली हाथ वापिस नहीं आता था। आप के विचार अत्यन्त उदार थे। आप सामाजिक सुधार के कट्टर पक्षपाती थे। आप कभी जाति-पाँति, बिरादरी और साम्प्रदायिक भेद नहीं रखते थे। आर्य-समाजी, सनातन-धर्मी व सिक्ख सभी की सुधार-प्रचारक संस्थाओं को आप यथोचित सहायता देते थे। लाहौर के डी० ए० वी० कालेज और सनातनधर्म कालेज दोनों ही को आपने सहायता दी है। जिस गुरुद्वारे में आप का जन्म हुआ था, उसे आप ने पक्का बनवा दिया और साथ ही वहाँ एक बड़ी सराय भी बनवा दी है। इस के अतिरिक्त आप ने शिमला और लाहौर के पास दो और विशाल गुरुद्वारे तथा सराय बनवा दी थीं, जिन के साथ ज़मीनें भी लगी हुई हैं।

यहाँ यह भी लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि सर गंगाराम-द्वारा स्थापित जितनी भी संस्थाओं का ऊपर वर्णन किया गया है, उन में कहीं भी किसी प्रकार की फ़ीस इत्यादि नहीं ली जाती और न किसी भी संस्था को चलाने के लिए जनता से धन माँगा जाता है।

उपसंहार

भगवान् कृष्ण ने गीता में सात्विक दान का यह लक्षण किया है—

> दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
> देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं स्मृतम् ॥
> गीता० अ० १७ श्लो० २

अर्थात् जो दान देश, काल और पात्र को देखकर बिना उपकार की इच्छा के कर्त्तव्य-बुद्धि से दिया जाता है, वह दान सात्विक है। इस कसौटी पर गंगाराम का महादान, वस्तुतः सात्विक ही है। आपने कभी भी प्रशंसा की इच्छा से दान नहीं दिया और न ही अन्य धनाढ्य पुरुषों की तरह अपात्र स्थानों पर दिया है। धनाढ्य पुरुषों के लिए सर गंगाराम का जीवन आदर्श है। हिन्दू-जाति का आज करोड़ों रुपया प्रतिवर्ष इस प्रकार नष्ट हो रहा है, जिस से कुछ स्वार्थी और दम्भाचारी पुरुषों के अतिरिक्त किसी को कुछ लाभ नहीं पहुँच रहा। हमारे धर्म-भीरु पुरुष अपना धन अधिकांश मान-दिखावे में, बहुत हुआ तो, मन्दिर, कूप, धर्मशाला और मठ बनाने में गँवाते हैं। बहुधा पाया गया है कि इन मन्दिर-मठों में आलसियों और मुफ्तखोरों के ही पौबारह होते हैं। हमारे भद्दे, कुत्सित और तामसिक दानों का नग्न रूप देखना हो तो काशी की अवस्था देख लीजिए। हमारे सात्विक दानों का ही परिणाम गंगाराम-भवन और गंगाराम मन्दिर हैं, जो शहर व बाजार रूप में लाहौर के बड़े-बड़े नगरों में शान को दिखा रहे हैं। इस प्रकार कुपात्रों, और भोग विलास में ..., विलासिता और

मतिवाले लक्ष्मी-पात्रों के लिए, जहाँ सर गंगाराम का जीवन अनुकरणीय है, वहाँ साधारण पुरुषों को भी उन से उद्योग, साहस, परिश्रम और धन के सद्-व्यय की शिक्षा मिल सकती है।

सर गंगाराम की मृत्यु पर कलकत्ते के सुप्रसिद्ध मासिक-पत्र 'मॉडर्नरिव्यू' के सुयोग्य सम्पादक श्रीयुत् रामानन्द चटर्जी ने लिखा था "धन का इस प्रकार सुचारू रूप से उपयोग और उस का अपने जीवन-काल में ही इस प्रकार दृढ़ सुप्रबन्ध और सुव्यवस्था इस देश के बहुत कम धनाढ्य पुरुषों में पाई जाती है और बंगाल में तो इस पीढ़ी में कोई भी ऐसा व्यक्ति हमें दृष्टि-गोचर नहीं होता।"

वस्तुतः न केवल बंगाल में, अपितु भारत के अन्य किसी प्रान्त में भी इस पीढ़ी में ऐसे बहुत कम महापुरुष उत्पन्न हुए हैं। धन और सम्पत्ति में सर गंगाराम से बढ़ कर, सम्भवतः, कई पुरुष इस देश में मिल सकते हैं, परन्तु उस के सदुपयोग, सुप्रबन्ध और दान के लिए,—निस्सन्देह, आप अद्वितीय थे। परमात्मा करें आप जैसे महात्मा इस देश और जाति में बार-बार उत्पन्न होवें।

प्रश्न

(१) सर गङ्गाराम की संक्षिप्त जीवनी लिखो।
(२) सर गङ्गाराम को सर्वश्रेष्ठ दानी क्यों कहा है ?
(३) इनके विशेष गुण क्या थे ? उदाहरण दो।

क्रोध

क्रोध दुःख के साक्षात्कार होने अथवा उस की सम्भावना से उत्पन्न होता है। साक्षात्कार के समय दुःख और उस के कारण के सम्बन्ध का परिज्ञान आवश्यक है। जैसे तीन-चार महीने के बच्चे को कोई हाथ उठा कर मार दे तो वह यह नहीं जानता कि उस की पीड़ा और मारने वाले के हाथ उठाने से क्या सम्बन्ध है। अतः वह केवल रो कर अपना दुःख मात्र प्रकट कर देता है। दुःख के कारण के साक्षात्कार के बिना क्रोध का उदय नहीं हो सकता। शिशु अपनी माता की आकृति से अभ्यस्त हो ज्यों ही यह जान जाता है कि दूध इसी से मिलता है, भूखा होने पर वह उस की आहट पा रोने में कुछ क्रोध के चिह्न दिखाने लगता है।

सामाजिक जीवन के लिए क्रोध की बड़ी आवश्यकता है। यदि क्रोध न हो तो जीव बहुत से दुःखों की चिर-निवृत्ति के लिए यत्न ही न करे। कोई मनुष्य किसी दुष्ट के नित्य प्रहार सहता है। यदि उस में क्रोध का विकास नहीं हुआ है तो वह केवल 'आह, ऊह' करेगा, जिस का कि प्रहार करने वाले पर सहज ही कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। उस दुष्ट के हृदय में दया उत्पन्न करने में बड़ी देर लगेगी। प्रकृति किसी को इतना समय ऐसे छोटे-छोटे कामों के लिए नहीं दे सकती। क्रमी-कभी भयभीत हो कर भी मनुष्य अपनी रक्षा किया करता है, पर समाज में इस प्रकार की दुःख-निवृत्ति चिरस्थायी नहीं होती। कहने का यह अभिप्राय नहीं कि क्रोध के समय क्रोध-कर्त्ता के हृदय में भावी दुःख से बचने या बचाने की इच्छा रहती है, बल्कि चेतन प्रकृति के भीतर क्रोध इसीलिए है।

ऊपर कहा जा चुका है कि क्रोध दुःख के कारण के परिज्ञान वा साक्षात्कार से होता है। अतः एक तो जहाँ इस ज्ञान में त्रुटि हुई वहाँ क्रोध धोखा देता है। दूसरी बात यह है कि क्रोध, जिस ओर से दुःख आता है, उसी ओर देखता है; अपने धारणकर्त्ता की ओर नहीं। जिस से दुःख पहुँचा है वा पहुँचेगा, उस का नाश हो वा उसे दुःख पहुँचे, यही क्रोध का लक्ष्य है। क्रोध करने वाले का फिर क्या होगा, इस से उसे कुछ सरोकार नहीं। इसी से एक तो मनोवेग ही एक दूसरे को परिमित किया करते हैं, दूसरे विचार-शक्ति भी उस पर अंकुश रखती है। यदि क्रोध इतना उग्र हुआ कि हृदय में दुःख के कारण की अवरोध-शक्ति के रूप और परिणाम के निश्चय, दया, भय आदि और विकारों के संचार तथा उचित-अनुचित के विचार के लिए जगह ही न रही तो, बहुत हानि पहुँच जाती है। जैसे कोई सुने कि उस का शत्रु बीस आदमी ले कर उसे मारने आ रहा है और वह चट क्रोध से व्याकुल होकर बिना शत्रु की शक्ति का विचार वा भय किये उसे मारने के लिए अकेला दौड़े तो, उस के मारे जाने में बहुत कम संदेह है। अतः कारण के यथार्थ निश्चय के उपरान्त आवश्यक मात्रा में और उपयुक्त स्थिति में ही क्रोध वह काम दे सकता है, जिस के लिए उसका विकास होता है।

कभी-कभी लोग अपने कुटुंबियों वा स्नेहियों से झगड़ कर उन्हें पीछे से दुःख पहुँचाने के लिए अपना सिर तक पटक देते हैं। यह सिर पटकना अपने को दुःख पहुँचाने के अभिप्राय से नहीं होता क्योंकि बिलकुल बेगानों के साथ कोई ऐसा

नहीं करता। जब किसी को क्रोध में सिर पटकते देखे
समझ लेना चाहिए कि उस का क्रोध ऐसे व्यक्ति के क्र
है, जिसे उस के सिर पटकने की चिन्ता है अर्थात् जिसे उस
सिर फूटने से, यदि उस समय नहीं तो आगे चल कर दुः
पहुँचेगा।

क्रोध का वेग इतना प्रबल होता है कि कभी-कभी मनुष्
यह विचार नहीं करता कि जिस ने दुःख पहुँचाया है, उस
दुःख पहुँचाने की इच्छा थी या नहीं। इसी से कभी तो या
अचानक पैर कुचल जाने पर किसी को मार बैठता है और
कभी ठोकर खा कर कंकड़-पत्थर तोड़ने लगता है। चाणक्य
ब्राह्मण अपना विवाह करने जाता था। मार्ग में कुश उस के
पैर में चुभे। वह चट मट्ठा और कुदाली लेकर पहुँचा और
कुशों को उखाड़-उखाड़ कर उन की जड़ों में मट्ठा देने लगा।
मैंने देखा कि एक ब्राह्मण देवता चूल्हा फूँकते-फूँकते थक गये,
जब आग नहीं जली तब उस पर कोप कर के चूल्हे में पानी
डाल कर किनारे हो गये। इस प्रकार का क्रोध असंस्कृत है।
यात्रियों ने बहुत से ऐसे जंगलियों का हाल लिखा है जो
रास्ते में पत्थर की ठोकर लगने पर बिना उस को चूर-चूर
किये आगे नहीं बढ़ते। अधिक अभ्यास के कारण यदि मनो-
वेग अधिक प्रबल पड़ गया तो वह अंतःकरण में अव्यवस्था
उत्पन्न कर मनुष्य को फिर बचपन से मिलती-जुलती अवस्था
में ले जाकर पटक देता है।

जिस ने एक बार दुःख पहुँचा, पर उस के दोहराए जाने
की संभावना कुछ भी नहीं है, उस को जो कष्ट पहुँचाया जाता
है, वह प्रतिकार कहलाता है। एक दूसरे से अपरिचित दो
आदमी रेल पर चले जाते हैं। इन में एक को आगे ही के

स्टेशन पर उतरना है । स्टेशन तक पहुँचते-पहुँचते बात ही बात में एक ने दूसरे को एक तमाचा जड़ दिया और उतरने की तैयारी करने लगा । अब दूसरा मनुष्य भी यदि उतरते-उतरते उस को एक तमाचा लगा दे तो यह उस का प्रतिकार या बदला कहा जायगा, क्योंकि उसे फिर उसी व्यक्ति से तमाचे खाने की संभावना का कुछ भी निश्चय नहीं। जहाँ और दुःख पहुँचने की कुछ भी संभावना होगी, वहाँ शुद्ध प्रतिकार नहीं होगा । हमारा पड़ोसी कई दिनों नित्य आ कर हमें दो-चार टेढ़ी-सीधी सुना जाता है । यदि हम उस को एक दिन पकड़ कर पीट दें, तो हमारा यह कर्म्म शुद्ध प्रतिकार नहीं कहलायेगा, क्योंकि नित्य गाली सुनने के दुःख से बचने के परिणाम की ओर भी हमारी दृष्टि रही। इन दोनों अवस्थाओं को ध्यानपूर्वक देखने से पता लगेगा कि दुःख से उद्विग्न हो कर दुःख दाता को कष्ट पहुँचाने की प्रवृत्ति दोनों में है। पर एक में वह परिणाम आदि के विचार को बिलकुल छोड़े हुए है और दूसरे में कुछ लिये हुए। इन में से पहले प्रकार का क्रोध निष्फल समझा जाता है। पर थोड़े धैर्य्य के साथ सोचने से जान पड़ेगा कि इस प्रकार के क्रोध से स्वार्थ-साधन तो नहीं होता, पर परोक्ष रूप में कुछ लोक-हित-साधन अवश्य हो जाता है। दुःख पहुँचाने वाले से हमें फिर दुःख पहुँचने का डर न सही, पर समाज को तो है। इस से उसे दंड दे देने से पहले तो उस की शिक्षा या भलाई हो जाती है, फिर समाज के और लोगों का भी बचाव हो जाता है। क्रोधकर्त्ता की दृष्टि तो इन परिणामों की ओर नहीं रहती है, पर सृष्टि-विधान में इस प्रकार के क्रोध की नियुक्ति इन्हीं परिणामों के लिए है।

क्रोध सब मनोविकारों से फुरतीला है, इसी से अवसर पड़ने पर यह और दूसरे मनोविकारों का भी साथ देकर उन की सहायता करता है। कभी यह दया के साथ कूदता है, कभी घृणा के। एक क्रूर कुमार्गी किसी अनाथ अबला पर अत्याचार कर रहा है। हमारे हृदय में उस अनाथ अबला के प्रति दया उमड़ रही है। पर दया की पहुँच तो आर्त तक ही है। यदि वह स्त्री भूखी होती तो हम उसे कुछ रुपया-पैसा देकर अपने दया के वेग को शान्त कर लेते। पर यहाँ तो उस दुःख का हेतु ही दूसरा है। ऐसी अवस्था में क्रोध ही उस अत्याचारी के दमन के लिए उत्तेजित करता है, जिस के बिना हमारी सारी दया व्यर्थ हो जाती है। क्रोध अपनी इस सहायता के बदले में दया की वाहवाही को नहीं बँटाता। काम क्रोध करता है, पर नाम दया का ही होता है। लोग यही कहते "उस ने दया कर के बचा लिया;" यह कोई नहीं कहता कि "उस ने क्रोध कर के बचा लिया।" ऐसे अवसरों पर यदि क्रोध दया का साथ न दे तो दया अपने अनुकूल परिणाम उपस्थित ही नहीं कर सकती। एक अघोरी हमारे सामने मक्खियाँ मार-मार कर खा रहा है और हमें घिन लग रही है। हम उस से नम्रतापूर्वक हटने के लिए कह रहे हैं, पर वह नहीं सुन रहा। इस पर चट हमें क्रोध आ जाता है और हम उसे बलात् हटाने में प्रवृत्त हो जाते हैं।

क्रोध के निरोध का उपदेश अर्थपरायण और धर्मपरायण दोनों ही देते हैं। परन्तु दोनों के ढंगों में बड़ा भेद है। रुपया वसूल करने का ढंग बताने वाला चाहे कड़े पड़ने की शिक्षा दे भी दे, पर धन के साथ धर्म की ध्वजा ले कर चलने वाला धोखे में भी क्रोध को पाप का बाप ही कहेगा। क्रोध रोकने का

अभ्यास ठगों और स्वार्थियों को, सिद्धों और साधकों से कम नहीं होता। जिस से कुछ स्वार्थ निकालना रहता है, जिसे बातों में फँसा कर ठगना रहता है, उस की कठोर से कठोर और अनुचित से अनुचित बातों पर न जाने कितने लोग तनिक भी क्रोध नहीं करते। पर उन का यह अक्रोध न धर्म का लक्षण है न साधन।

बैर क्रोध का ही फल है। जिस से हमें दुःख पहुँचा है और उस पर हम ने जो क्रोध किया है, वह यदि हमारे हृदय में बहुत दिनों तक टिका रहा तो वह बैर कहलाता है। इस स्थायी रूप में टिक जाने के कारण क्रोध की त्तिप्रता और हड़बड़ी तो कम हो जाती है, पर वह धैर्य्य के साथ मिल कर विचार और युक्ति के साथ अपने त्राता को पीड़ित करने की प्रेरणा बहुत काल तक किया करता है। क्रोध अपना बचाव करते हुए शत्रु को पीड़ित करने की युक्ति आदि सोचने का समय नहीं देता पर बैर इस के लिए बहुत समय देता है, क्यों कि उस का सहयोग धैर्य्य से हो गया है। दुःख पहुँचने के साथ ही दुःखदाता को पीड़ित करने की प्रेरणा क्रोध कहलाती है और कुछ काल बीत जाने पर वह बैर का रूप धारण कर लेता है। किसी ने हमें गाली दी। यदि हम ने उसी समय उसे मार दिया तो हम ने क्रोध किया। मान लीजिये कि वह गाली दे कर भाग गया और दो महीने बाद हमें कहीं मिला। अब यदि उस से बिना फिर गाली सुने हम ने उसे मार दिया तो यह हमारा बैर निकालना हुआ। इस विवरण से स्पष्ट है कि बैर उन्हीं प्राणियों में होता है, जिन में धारणा अर्थात् भावों के संचय की शक्ति होती है। पशु और बच्चे किसी से बैर नहीं मानते।

वे क्रोध करते हैं और थोड़ी देर के बाद भूल जाते हैं। क्रोध का स्थायी रूप भी आपदाओं की पहचान करा कर उन से बहुत काल तक बचाये रखने के लिए दिया गया है।

प्रश्न

(१) क्रोध की उत्पत्ति और विकास कैसे होता है ?
(२) समाज में क्रोध की क्या उपयोगिता है ?
(३) दया, बैर और क्रोध में क्या संबन्ध है ?

शैव्या और हरिश्चन्द्र

(नेपथ्य में रोने की आवाज़ सुन पड़ती है)

ह०—अरे अब सवेरा होने के समय शव आया ! अथवा चाण्डाल-कुल का सदा कल्याण हो, हमें इस से क्या ?

(सावधान इत्यादि कहता हुआ फिरता है)

(नेपथ्य में)

हाय ! कैसी भई ! हाय बेटा ! हमें रोती छोड़ के कहाँ चले गये ! हाय-हाय रे !

ह०—अहह ! किसी दीन स्त्री का शब्द है, और शोक भी *इस को पुत्र का है। हाय-हाय ! हम को भी भाग्य ने क्या ही निर्दय और बीभत्स कर्म सौंपा है। इस से भी वस्त्र माँगना पड़ेगा।*

(रोती हुई शैव्या रोहिताश्व का मुरदा लिये आती है)

शै०—*(रोती हुई)* हाय बेटा ! जब बाप ने छोड़ दिया, तब तुम भी छोड़ चले। हाय ! हमारी विपत्ति और बुढ़ौती की

ओर भी तुम ने न देखा ! हाय हाय ! हायरे ! अब हमारी कौन गति होगी ?

(रोती है)

ह०—हाय हाय ! इस के पति ने भी छोड़ दिया है। हा ! इस तपस्विनी को निष्करुण विधि ने बड़ा ही दुःख दिया है।

शै—(रोती हुई) हाय बेटा ! अरे आज मुझे किस ने लूट लिया ? हाय मेरी बोलती चिड़िया कहाँ उड़ गई ! हाय अब मैं किस का मुँह देख कर जीऊँगी ! हाय ! मेरी अन्धी की लकड़ी कौन छीन ले गया ! हाय मेरा ऐसा सुन्दर खिलौना किस ने तोड़ डाला ! अरे बेटा, तू तो मरे पर भी सुन्दर लगता है। हायरे ! अरे बोलता क्यों नहीं ! बेटा जल्दी बोल, देख मा कब की पुकार रही है ! बच्चा, तू तो एक ही दफ़े पुकारने में दौड़ कर गले से लिपट जाता था, आज क्यों नहीं बोलता ?

(शव को बार-बार गले लगाती, देखती और चूमती है)

ह०—हाय हाय ! इस दुखिया के पास तो खड़ा नहीं हुआ जाता।

शै०—(पागल की भाँति) अरे यह क्या हो रहा है ? बेटा, कहाँ गये हो ? आओ जल्दी ! अरे अकेले इस मसान में मुझे डर लगता है ! यहाँ मुझ को कौन ले आया है ? रे ! बेटा, जल्दी आओ। अरे क्या कहते हो, मैं गुरु को फल लेने गया था, वहाँ काले साँप ने मुझे काट लिया। हाय ! हाय रे !! अरे कहाँ काट लिया ? अरे कोई दौड़ के किसी गुनी को बुलाओ जो जिलावे बच्चे को ! अरे यह साँप कहाँ गया, हम को क्यों नहीं काटता ? काट रे काट, क्या उस सुकुँआर बच्चे ही पर बल दिखाना था ?

हमें काट। हाय! हम को नहीं काटता। अरे यहाँ तो कोई साँप-बाँप नहीं है। मेरे लाल, झूठ बोलना कब से सीखे? हाय हाय! मैं इतना पुकारती हूँ और तुम खेलना नहीं छोड़ते? बेटा, गुरु जी पुकार रहे हैं, उन के होम की बेला निकली जाती है। देखो, बड़ी देर से यह तुम्हारे आसरे बैठे हैं। दो जल्दी उन को दूब और देलपत्र! हाय! हम ने इतना पुकारा, तुम कुछ नहीं बोलते! (ज़ोर से) बेटा, साँझ भई, सब विद्यार्थी लोग घर फिर आये, तुम अब तक क्यों नहीं आये? (आगे शव देख कर) हाय हाय रे! अरे मेरे लाल को साँप ने सचमुच डस लिया! हाय लाल! हाय रे! मेरी आँखों के उजियाले को कौन ले गया? हाय मेरा बोलता हुआ सुग्गा कहाँ उड़ गया? बेटा! अभी तो बोल रहे थे, अभी क्या हो गया? हाय मेरा बसा घर आज किस ने उजाड़ दिया! हाय मेरी कोख में किस ने आग लगा दी! हाय मेरा कलेजा किस ने निकाल लिया! (चिल्ला-चिल्ला कर रोती है) हाय, लाल कहाँ गये? अरे! अब मैं किस का मुँह देख के जिऊँगी रे? अब मा कह के मुझ को कौन पुकारेगा? अरे! आज किस बैरी की छाती ठण्डी भई रे? अरे, तेरे सुकुँआर अंगों पर भी काल को तनिक दया न आई! अरे बेटा! आँख खोलो! हाय! मैं सब विपत तुम्हारा ही मुँह देख कर सहती थी, सो अब कैसे जीती रहूँगी। अरे लाल! एक बेर तो बोलो (रोती है)

ह०—न जाने क्यों इस के रोने पर मेरा कलेजा फटा जाता है।

शै०—(रोती हुई) हा नाथ! अरे अपने गोद के खिलाये बच्चे की यह दशा क्यों नहीं देखते? हाय! तुम ने तो इस को

हमें सौंपा था कि इसे अच्छी तरह पालना, सो हम ने इस की यह दशा कर दी। हाय! अरे ऐसे समय में भी आकर नहीं सहाय होते? भला एक बार लड़के का मुँह तो देख जाओ! अरे मैं अब किस के भरोसे जीऊँगी?

ह०—हाय हाय! इस की बातों से तो प्राण मुँह को चले आते हैं और मालूम होता है कि संसार उलटा जाता है। यहाँ से हट चलें (कुछ दूर हट कर उस की ओर देखता हुआ खड़ा हो जाता है)

शै०—(रोती हुई) हाय! यह विपत का समुद्र कहाँ से उमड़ पड़ा! अरे छलिआ मुझे छल कर कहाँ भाग गया! (देख कर) अरे आयुष की रेखा तो इतनी लम्बी है, फिर अभी से यह बज्र कहाँ से टूटा पड़ा! अरे ऐसा सुन्दर मुँह, बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बी-लम्बी भुजा, चौड़ी छाती, गुलाब सा रङ्ग! हाय, मरने के तुझ में कौन लच्छन थे, जो भगवान् ने तुझे मार डाला? हाय लाल! अरे, बड़े-बड़े जोतिषी, गुनी लोग तो कहते थे कि तुम्हारा बेटा बड़ा प्रतापी चक्रवर्त्ती राजा होगा, बहुत दिन जियेगा सो सब झूठ निकला। हाय! पोथी, पत्रा, पूजा, पाठ, दान, जप, होम, कुछ भी तो काम न आया! हाय! तुम्हारे बाप का कठिन पुन्य भी तुम्हारा सहाय न हुआ और तुम चल बसे! हाय!

ह०—अरे इन बातों से तो मुझे बड़ी शंका होती है (शव को भली भाँति देख कर) अरे इस लड़के में तो सब लक्षण चक्रवर्त्ती के से दिखाई पड़ते हैं! हाय! न जानें किस बड़े कुल का दीपक आज इस ने बुझाया है, अरे न जानें किस नगर को आज इस ने अनाथ किया है? हा, रोहिताश्व भी इतना बड़ा हुआ

होगा। (बड़े सोच से) हाय हाय ! मेरे मुँह से क्या अमङ्गल निकल गया ! नारायण (सोचता है)

शै०—भगवन् विश्वामित्र ! आज तुम्हारे सब मनोरथ पूरे हुए ! हाय !

ह०—(घबरा कर) हाय-हाय ! यह क्या ? (भली भाँति देख कर रोता हुआ) हाय ! अब तक मैं सन्देह ही में पड़ा हूँ ! अरे मेरी आँखें कहाँ गई थीं, जिन ने अब तक पुत्र रोहिताश्व को न पहिचाना, और कान कहाँ गये थे, जिन ने अब तक महारानी की बोली न सुनी ? हा पुत्र ! हा लाल ! हा सूर्यवंश के अंकुर ! हा हरिश्चन्द्र की विपत्ति के एकमात्र अवलम्ब ! हाय ! तुम ऐसे कठिन समय में दुखिया मा को छोड़ कर कहाँ गये ? अरे तुम्हारे कोमल अङ्गों को क्या हो गया ? तुम ने क्या देखा, क्या खाया, क्या सुख भोगा कि अभी से चल बसे ? पुत्र ! स्वर्ग ऐसा ही प्यारा था तो मुझ से कहते, मैं अपने बाहुबल से तुम को इसी शरीर से स्वर्ग पहुँचा देता । अथवा अब इस अभिमान से क्या ? भगवन् इस अभिमान का फल यह सब दे रहा है । हाय पुत्र ! (रोता है)

आह ! मुझ से बढ़ कर और कौन मन्दभाग्य होगा ! राज्य गया, धन-जन-कुटुम्ब सब छूटा, उस पर भी यह दारुण पुत्र-शोक उपस्थित हुआ ! भला अब मैं रानी को क्या मुँह दिखाऊँ ? निस्सन्देह मुझ से अधिक अभागा और कौन होगा ? जानें हमारे किस जन्म के पाप उदय हुए हैं ? जो कुछ हम ने आज तक किया, वह यदि पुण्य होता तो हमें यह दुःख न देखना पड़ता । हमारा धर्म का अभिमान सब झूठा था, क्योंकि यह कलियुग नहीं है कि अच्छा करते बुरा फल मिले। निस्सन्देह

मैं महा अभागा और बड़ा पापी हूँ। (रङ्गभूमि की पृथ्वी हिलती है और नेपथ्य में शब्द होता है) क्या प्रलय-काल आ गया? नहीं, यह बड़ा भारी असगुन हुआ है। इस का फल कुछ अच्छा नहीं या अब बुरा होना ही क्या बाकी रह गया है जो होगा? हा! न जानें किस अपराध से दैव इतना रूठा है। (रोता है) हा, सूर्य्य कुल-आल-वाल-प्रवाल! हा हरिश्चन्द्र हृदयानन्द! हा शैव्यावलम्ब! हा वत्स रोहिताश्व! हा मातृ-पितृ-विपत्ति-सहचर! तुम हम लोगों को इस दशा में छोड़ कर कहाँ गये! आज हम सचमुच चाण्डाल हुए। लोग कहेंगे कि इस ने न जानें कौन दुष्कर्म किया था कि पुत्र-शोक देखा। हाय! हम संसार को क्या मुँह दिखावेंगे? (रोता है) वा संसार में इस बात के प्रगट होने के पहले ही हम भी प्राण त्याग करें? हा निर्लज्ज प्राण! तुम अब भी क्यों नहीं निकलते? हा वज्र हृदय! इतने पर भी तू क्यों नहीं फटता? अरे नेत्रो! अब और क्या देखना बाकी है कि तुम अब तक खुले हो? या इस व्यर्थ-प्रलाप का फल ही क्या है, समय बीता जाता है। इस के पूर्व कि किसी से सामना हो, प्राण त्याग करना ही उत्तम बात है। (पेड़ के पास जाकर फाँसी देने के योग्य पेड़ की डाल खींच कर उस में दुपट्टा बाँधता है) धर्म! मैं ने अपने जानें सब अच्छा ही किया, परन्तु न जानें किस कारण मेरा सब आचरण तुम्हारे विरुद्ध पड़ा, सो मुझे क्षमा करना। (दुपट्टे की फाँसी गले में लगाना चाहता है कि एक साथ चौंक कर) गोविन्द, गोविन्द! यह मैं ने क्या अनर्थ, अधर्म विचारा! भला मुझ दास को अपने शरीर पर क्या अधिकार था कि मैं ने प्राण त्याग करना चाहा। भगवान सूर्य इसी क्षण के हेतु अनुशासन करते थे। नारायण! नारायण!

इस इच्छा-कृत मानसिक पाप से कैसे उद्धार होगा ? हे सर्वान्तर्यामी जगदीश्वर ! क्षमा करना। दुःख से मनुष्य की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती, अब तो मैं चाण्डाल कुल का दास हूँ। न अब शैव्या मेरी स्त्री है और न रोहिताश्व मेरा पुत्र। चलूँ, अपने स्वामी के काम पर सावधान हो जाऊँ, वा देखूँ अब दुःखिनी शैव्या क्या करती है ?

(शैव्या के पीछे जाकर खड़ा होता है)

शै०—(पहली तरह बहुत रोकर) हाय ! अब मैं क्या करूँ ! अब मैं किस का मुँह देख कर संसार में जीऊँगी ? हाय ! मैं आज से निपूती भई ! पुत्रवती स्त्री अपने बालकों पर अब मेरी छाया न पड़ने देंगी ! हा ! नित्य सवेरे उठ कर अब मैं किस की चिन्ता करूँगी ? खाने के समय मेरी गोद में बैठ कर और मुझ से माँग-माँग कर अब कौन खायगा ! मैं परोसी थाली सूनी देख कर कैसे प्राण रक्खूँगी ! (रोती है) हाय ! खेलते-खेलते आकर मेरे गले से कौन लिपट जायगा ? और माँ-माँ कह कर तनक-तनक बातों पर कौन हठ करेगा ! हाय ! मैं अब किस को अपने आँचल से मुँह की धूल पोंछ कर गले लगाऊँगी और किस के अभिमान से विपत में भी फूली-फूली फिरूँगी ! (रोती है) या जब रोहिताश्व ही नहीं तो मैं ही जी के क्या करूँगी। (छाती पीट कर) हाय ! प्राण, तुम अब भी क्यों नहीं निकलते ? हाय ! मैं ऐसी स्वारथी हूँ कि आत्म-हत्या के नरक के भय से अब भी अपने को नहीं मार डालती ! नहीं नहीं, अब मैं न जीऊँगी ! या तो पेड़ में फाँसी लगा कर मर जाऊँगी या गंगा में कूद पड़ूँगी !

(उन्मत्त की भाँति उठ कर दौड़ना चाहती है)

ह०—(भाड़ में से)

तनहिं बेंचि दासी कहवाई ।
मरत स्वामि-आयसु बिनु पाई ॥
करु न अधर्म सोच जिय माहीं ।
'पराधीन सपने सुख नाहीं' ॥

शै०—(चौकन्नी हो कर) अहा ! यह किस ने इस कठिन समय में धर्म का उपदेश किया ? सच है, मैं अब इस देह की कौन हूँ जो मर सकूँ ! हाय दैव ! तुझसे यह भी न देखा गया कि मैं मर कर भी सुख पाऊँ ? (कुछ धीरज धर कर) तो चलूँ छाती पर वज्र धर के अब लोकरीति करूँ । (रोती और लकड़ी चुन कर चिता बनाती हुई) हाय ! जिन हाथों से ठोक-ठोक कर रोज़ सुलाती थी, उन्हीं हाथों से आज चिता पर कैसे रक्खूँगी । जिस के मुँह में छाला पड़ने के भय से कभी मैं ने गरम दूध भी नहीं पिलाया उसे.................... ।

(बहुत ही रोती है)

ह०—धन्य देवी, आखिर तो चन्द्र-सूर्यकुल की स्त्री हो, तुम न धीरज धरोगी तो और कौन धरेगा ?

शै०—(चिता बना कर पुत्र के पास आ [illegible] और रोती है)

(नेपथ्य में)

अहो धैर्यमहोसत्यमहोदानमहोबलम् ।
त्वया राजन् हरिश्चन्द्र सर्वं लोकोत्तरं कृतम् ॥

(दोनों आश्चर्य से ऊपर देखते हैं)

शै०—हाय ! इस कुसमय में आर्यपुत्र की यह कौन स्तुति करता है ? वा इस स्तुति ही से क्या है, शास्त्र सब असत्य हैं, नहीं तो आर्यपुत्र से धर्मी की यह गति हो। यह केवल देवताओं और ब्राह्मणों का पाखण्ड है।

ह०—(दोनों कानों पर हाथ रख कर) नारायण ! नारायण ! महाभागे ऐसा मत कहो। शास्त्र, ब्राह्मण और देवता त्रिकाल में सत्य हैं। ऐसा कहोगी तो प्रायश्चित करना होगा। अपना धर्म विचारो। लाओ मृतकम्बल हमें दो और अपना काम आरम्भ करो ! (हाथ फैलाता है)

शै०—(महाराज हरिश्चन्द्र के हाथ में चक्रवर्ती का चिह्न देख कर और कुछ स्वर कुछ आकृति से अपने पति को पहिचान कर) हा आर्यपुत्र ! इतने दिन तक कहाँ छिपे थे ? देखो अपने गोद के खिलाये हुए दुलारे पुत्र की दशा ! तुम्हारा प्यारा रोहिताश्व, देखो अब अनाथ की भाँति श्मशान में पड़ा है। (रोती है)

ह०—प्रिये ! धीरज धरो, यह रोने का समय नहीं है। देखो सवेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कोई आजाय और हम लोगों को जान ले और एक लज्जा मात्र बच गई है, वह भी जाय। चलो कलेजे पर सिल रख कर अब रोहिताश्व की क्रिया करो और आधा कम्बल हम को दो।

शै०—(रोती हुई) नाथ मेरे पास तो एक भी कपड़ा नहीं था, अपना आँचल फाड़ कर इसे लपेट लाई हूँ, उस में

से भी जो आधा दे दूँगी तो यह खुला रह जायगा। हाय! चक्रवर्ती के पुत्र को आज कफ़न भी नहीं मिलता!
(बहुत रोती है)

ह०—(बलपूर्वक आँसुओं को रोक कर और बहुत धीरज धर कर) प्यारी! रो मत! ऐसे समय में तो धीरज और धरम रखना काम है! मैं जिस का दास हूँ, उस की आज्ञा है कि बिना आधा कफ़न लिये क्रिया मत करने दो। इस से मैं यदि अपनी स्त्री और अपना पुत्र समझ कर तुम से इस का आधा कफ़न न लूँ तो बड़ा अधर्म होगा। जिस हरिश्चन्द्र ने उदय से अस्त तक की पृथ्वी के लिए धर्म न छोड़ा उस का धर्म आध गज कपड़े के वास्ते मत छुड़ाओ और कफ़न से जल्दी आधा कपड़ा फाड़ दो। देखो सवेरा हुआ चाहता है, ऐसा न हो कि कुलगुरु भगवान् सूर्य अपने वंश की यह दुर्दशा देख कर चित्त में उदास हों! (हाथ फैलाता है)

शै०—(रोती हुई) नाथ! जो आज्ञा! (रोहिताश्व का मृत-कम्बल फाड़ा चाहती है कि रंगभूमि की पृथ्वी हिलती है, तोप छूटने का सा बड़ा शब्द और बिजली का सा उजाला होता है, नेपथ्य में बाजे की और 'धन धन्य' और 'जय जय' की ध्वनि होती है, फूल बरसते हैं और भगवान नारायण प्रगट हो कर राजा हरिश्चन्द्र का हाथ पकड़ लेते हैं)

प्रश्न

(१) उपर्युक्त खेल में राजा हरिश्चन्द्र की किस कठोर परीक्षा का उल्लेख है?

(२) इस खेल से हमें क्या शिक्षा मिलती है?

(३) कर्तव्य के सामने पिता-पुत्र-पत्नी कुछ नहीं है—इस का उदाहरण इस खेल में कैसे मिलता है?

भाषा-शिक्षा और स्मरण-शक्ति

हमारी आजकल की शिक्षा-पद्धति में भाषाओं के सीखने पर जो इतना ज़ोर दिया जाता है, उस का कारण लोग यह बतलाते हैं कि उस से स्मरण-शक्ति अधिक बढ़ जाती है। उन का मत है कि भाषा-शिक्षा से यह बड़ा लाभ होता है। वे यह समझते हैं कि शब्दों को रटने से ही स्मरण-शक्ति बढ़ सकती है, अन्य किसी प्रकार से नहीं। परन्तु यह उन का भ्रम है। सच बात यह है कि स्मरण-शक्ति की वृद्धि के लिए विज्ञान से बढ़ कर और कोई विषय नहीं। स्मरण-शक्ति को बढ़ाने के लिए शास्त्रीय विषयों के अध्ययन में बहुत बड़ा मैदान खाली मिल जाता है। सौर जगत् अर्थात् ग्रह-मालिका के विषय में आज तक जितनी बातें जानी गई हैं, उन सब को याद कर लेना कोई सहज काम नहीं, और आकाश गङ्गा की की रचना आदि के सम्बन्ध में आज तक जो कुछ मालूम हुआ है, उसे याद रखना तो और भी कठिन काम है। रसायन-शास्त्र में प्रति दिन नये-नये मिश्रित पदार्थों का पता लगाने से उन की संख्या इतनी बढ़ गई है कि स्कूलों और कालेजों के अध्यापकों को छोड़ कर शायद ही और कोई उन सब की गिनती कर सके। सब मिश्रित पदार्थों की घटना, उन के अवयवों का परस्पर सम्बन्ध, और उनकी संयोग-क्रिया आदि की बातें अच्छी तरह याद रखना तो जन्म भर रसायन-विद्या का अभ्यास किये बिना प्रायः असम्भव-सा ही है। पृथ्वी की पीठ में, उस की तहों से और उस के पेट में भरे हुए अनन्त पदार्थों से सम्बन्ध रखने वाली बातों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भूगर्भ-शास्त्र का अभ्यास करने वालों को वर्षों के वर्ष

बिताने पड़ते हैं। पृथ्वी की पीठ से जिन बातों का सम्बन्ध है, वही थोड़ी नहीं। पेट से सम्बन्ध रखने वाली बातें तो और भी अधिक हैं। पदार्थ-विज्ञान-शास्त्र को ही देखिये। ध्वनि, उष्णता, प्रकाश, बिजली इत्यादि इस शास्त्र के प्रधान अङ्ग हैं। इन में सीखने योग्य इतनी बातें हैं, कि उन की असंख्यता का ख़्याल कर के उसे सीखने की इच्छा रखने वालों का कलेजा धड़क उठता है। और जब हम इन्द्रिय-विशिष्ट-विज्ञान की ओर ध्यान देते हैं, तब तो हमें स्मरण-शक्ति की और भी अधिक आवश्यकता प्रतीत होती है। अकेले मानव-शरीर-शास्त्र ही में हड्डियों, रगों और पट्ठों की संख्या ही इतनी अधिक है कि उन सब को अच्छी तरह याद रखने लिए छः-छः सात-सात बार उन के नाम रटने पड़ते हैं। वनस्पति-विद्या के जानने वालों ने वनस्पति के जो भेद किये हैं, उन की संख्या तीन लाख बीस हज़ार तक पहुँची है, और प्राणि-शास्त्र के ज्ञाताओं को प्राणियों की जिन तरह-तरह की सूरतों से काम पड़ता है, उनकी संख्या कोई बीस लाख है। विज्ञान-वेत्ताओं के सामने याद रखने और समझने योग्य इतना बड़ा कोष पड़ा हुआ है कि उन्हें उन बातों के जानने के लिए अपनी मेहनत को अनेक भागों और उन भागों को अनेक विभागों में बाँटना पड़ता है। बिना इस के उन का काम चल ही नहीं सकता। एक-एक शाखा-प्रशाखा का अलग-अलग अभ्यास करने के लिए उन्हें विवश होना पड़ता है। हर आदमी किसी विशेष शाखा या प्रशाखा का पूरे तौर पर अभ्यास कर के उस से सम्बन्ध रखने वाली दूसरी शाखा-प्रशाखाओं का साधारण रूप में थोड़ा बहुत ज्ञान प्राप्त कर लेता है, और बहुत हुआ तो और शाखा-प्रशाखाओं

की भी मोटी-मोटी बातें जान लेता है। शास्त्र-ज्ञान की आज-कल ऐसी व्यवस्था है। अतएव इस में सन्देह नहीं कि वैज्ञानिक विषयों की काम निकाल लेने भर के लिए ही पर्याप्त सामिग्री विद्यमान है। और कुछ नहीं तो कम से कम इतना तो अवश्य ही है कि विज्ञान की शिक्षा से स्मरण-शक्ति उतनी ही बढ़ सकती है, जितनी कि भाषा की शिक्षा से।

वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा से स्मरणशक्ति भी बढ़ती है और साथ ही बुद्धि भी बढ़ती है।

अब इस बात का विचार कीजिये कि केवल स्मरण-शक्ति को बढ़ाने के लिए यदि भाषा-शिक्षा का उतना ही उपयोग हो जितना कि विज्ञान-शिक्षा का, उस से अधिक नहीं, तो भी यह मानना पड़ेगा कि वैज्ञानिक विषयों के अभ्यास से स्मरण-शक्ति की जो वृद्धि होती है, उस में एक प्रकार की विशेषता है। इस विशेषता के कारण वह वृद्धि भाषाओं के अभ्यास से प्राप्त हुई वृद्धि की उपेक्षा अधिक महत्त्व की है। भाषा सीखने में जो बातें याद करनी पड़ती हैं, उन का सम्बन्ध संसार की जिन घटनाओं से होता है, वे बहुत करके आकस्मिक होती हैं। यह नहीं कि इस तरह का सम्बन्ध निश्चितरूप से होता ही है। परन्तु वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा प्राप्त करने में जिन बातों या जिन कल्पनाओं का सम्बन्ध ध्यान में रखना पड़ता है, वह सम्बन्ध सांसारिक घटनाओं और सांसारिक वस्तुओं से निश्चित होता है। वैज्ञानिक बातों का जो सम्बन्ध सांसारिक वस्तुओं से होता है, वह बहुधा आवश्यकीय होता है, नित्य होता है, नियमित होता है। वह आकस्मिक या अनिश्चित

नहीं होता। उस में कार्य-कारण का सम्बन्ध भी रहता है। इस में कोई सन्देह नहीं कि शब्द और अर्थ में एक प्रकार का स्वाभाविक सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध-सूत्र की खोज यदि जड़ तक नहीं, तो बहुत दूर तक, अवश्य की जा सकती है। यह खोज कुछ निश्चित नियमों के अनुसार की जाती है। इन नियमों के समूह से मनोविज्ञान की एक शाखा बन गई है। इस शाखा का नाम है। "भाषा-विज्ञान"। परन्तु इस बात को शायद सब लोग स्वीकार करेंगे कि आजकल, साधारणतः भाषाओं की शिक्षाओं में न तो शब्द और अर्थ का ही सम्बन्ध बतलाया जाता है और न उन के नियम ही बतलाये जाते हैं। इस से लोग शब्दार्थ के सम्बन्ध को अनित्य या आकस्मिक समझते हैं। वे यह नहीं समझते कि इस तरह का सम्बन्ध नित्य है—स्वाभाविक है। परन्तु विज्ञान की बात इस से बिल्कुल उलटी है, क्योंकि जितनी वैज्ञानिक बातें हैं, जितने वैज्ञानिक सिद्धान्त हैं, उन सब का सम्बन्ध कार्य-कारण-भाव युक्त होता है और अच्छी तरह सिखलाने से समझ में भी आ जाता है। भाषा की शिक्षा में शब्दार्थों का सम्बन्ध जानने के लिए बुद्धि सञ्चालन की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। वैज्ञानिक बातों का सम्बन्ध समझने के लिए बुद्धि संचालन के बिना काम ही नहीं चल सकता। तात्पर्य्य यह कि विज्ञान सीखने के लिए स्मरण शक्ति के संचालन की भी आवश्यकता पड़ती है और बुद्धि संचालन की भी।

प्रश्न

(१) विज्ञान शिक्षा का स्मरण-शक्ति और बुद्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है?

(२) भाषा शिक्षा की अपेक्षा विज्ञान-शिक्षा बुद्धि को क्यों प्रबल करती है?

विजया-दशमी

दशहरे का त्योहार भिन्न-भिन्न कालीन भिन्न-भिन्न पुटों से बना है। दशहरे के त्योहार में असंख्य युगों के असंख्य प्रकार के आर्य-पुरुषार्थ की विजय समाविष्ट है।

मनुष्यों का पारस्परिक युद्ध जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही अथवा उस से भी अधिक महत्वपूर्ण युद्ध, मनुष्य और प्रकृति का है। मनुष्य की प्रकृति पर सब से बड़ी विजय खेती है। जिस दिन मनुष्य ज़मीन जोत कर, उस में नव-धान्य बो कर कृत्रिम जल से उस का सिंचन कर के, उस से अपनी आजीविका और भविष्य के संग्रह के लिए आवश्यक अनाज प्राप्त कर सका, वही उस की बड़ी से बड़ी विजय का दिन था। उस दिन की स्मृति को हमेशा ताज़ा रखना कृषि-प्रधान आर्य लोगों का प्रथम कर्त्तव्य था।

बीसवीं सदी भौतिक और यान्त्रिक अन्वेषण की सदी मानी जाती है, और यह ठीक भी है। मनुष्य-प्राणी की हस्ती और संस्कृति में जो महान् अन्वेषण कारणीभूत हुए हैं, वे सब आदि-युग में ही आविष्कृत हुए हैं। ज़मीन जोतने की कला, सूत कातने की कला, आग सुलगाने की कला और मट्टी से पक्का घड़ा बनाने की कला—ये चार कलायें मानवी संस्कृति का आधार-स्तम्भ हैं। इन चारों कलाओं का उपयोग कर के विजया-दशमी के दिन हम ने कृषि-महोत्सव की रचना की है।

विजया-दशमी के त्योहार में चातुर्वर्ण्य एकत्र दिखाई देता है। ब्राह्मणों का सरस्वती-पूजन और विद्यारम्भ, क्षत्रियों का शस्त्र-पूजन, अश्वपूजन और सीमोल्लंघन और वैश्यों की खेती—ये तीनों बातें इस त्योहार में एकत्र होती हैं। और जहाँ

इतना बड़ा काम हो, वहाँ शूद्रों की परिचर्या तो समाविष्ट हुई है। देहात के लोग नवरात्र के अनाज के सोने जैसे जवारे तोड़ कर पगड़ी में खोंस लेते हैं और बढ़िया पोशाक पहन कर बाजे-गाजे के साथ सीमोल्लंघन करने जाते हैं। उस समय ऐसा दृश्य दिखाई देता है मानो ये सारे देश का पौरुष व पराक्रम दिखाने के लिए बाहर निकल रहे हों।

दशहरे का उत्सव जिस प्रकार कृषि-प्रधान है, उसी प्रकार क्षात्र महोत्सव भी है। जब किराये के सैनिकों को मुर्गों की तरह लड़ाने की प्रथा न थी, तब क्षात्र-तेज और राज-तेज किसानों में ही परिवर्धित होता था। किसान का अर्थ है क्षेत्र-पति—क्षत्रिय। जो साल भर तक धरती-माता की सेवा करता है। वही प्रसंग पड़ने पर उसकी रक्षा भी करता है। नदी, नाले, पहाड़, पहाड़ी के साथ जिन का रात-दिन संबंध रहता है; घोड़े, बैल जैसे पशुओं को शिक्षा दे सकता है, अनेक मजदूरों को जो आजीविका दे सकता है और सारे समाज की जो उदर-पूर्त्ति करता है, उस के अन्दर यदि राजत्व के समस्त गुण वृद्धि पावें तो आश्चर्य की क्या बात है? जो राजा है वही किसान है, और जो किसान है वही राजा है।

इस अवस्था में कृषि-त्योहार के क्षात्र-त्योहार हो जाने में सोलहों आना ऐतिहासिक औचित्य है। क्षत्रियों का मुख्य कर्त्तव्य है—स्वदेश-रक्षा। पर कितनी ही बार, इसके पहले कि शत्रु स्वदेश में घुस कर देश को नष्ट-भ्रष्ट करे, उस के दुष्ट-हेतु का पता पा कर स्वयं ही सीमोल्लंघन कर के—अर्थात् अपनी हद को लाँघ कर शत्रु के ही देश में लड़ाई ले जाना ठीक और वीरोचित होता है।

थोड़ा ही विचार करने से ज्ञात हो जायगा कि इसी सीमोल्लंघन के मूल में आगे साम्राज्य-भाव विद्यमान है। अपनी हद से बढ़ कर दूसरे के देश पर कब्ज़ा करना, वहाँ से धन-धान्य लूट कर लाना, इस में धर्म-भाव की अपेक्षा महत्वकांक्षा का अंश अधिक है। इस प्रकार लूट कर लाये सोने को यदि पराक्रमी पुरुष अपने ही पास रक्खें तो वर्तमान युग के क्षात्र-प्रकोप (Militarism) के साथ वैश्य-प्रकोप (Industrialism) के सम्मेलन की भयंकर स्थिति उत्पन्न हो जाय। प्रभुत्व और पूँजी जहाँ एकत्र हैं, वहाँ शैतान को अलहदा निमन्त्रण देने की आवश्यता नहीं रहती। इसीलिए दशहरे के दिन लूट कर लाया सोना तमाम सज्जनों में बाँट देना, उस दिन की एक महत्वपूर्ण धार्मिक विधि निश्चित की गई है।

सुवर्ण बाँट देने की प्रथा का सम्बन्ध रघुवंश के राजा रघु के साथ भी जुड़ा हुआ है।

रघु राजा ने विश्वजित् यज्ञ किया था। समुद्र वलयांकित पृथ्वी को जीतने के बाद सर्वस्व दान कर देना, इस का नाम विश्वजित् यज्ञ है। ऐसा विश्वजित् यज्ञ पूरा कर चुकने के बाद रघु राजा के पास वरतंतु ऋषि का शिष्य विद्वान और तेजस्वी कौत्स आया। कौत्स ने अपने गुरु से चौदह विद्यायें ग्रहण की थीं और उस की दक्षिणा के लिए चौदह कोटि सुवर्ण मुद्रा गुरु को देने का संकल्प किया था, परन्तु सर्वस्व दान कर चुकने के बाद मिट्टी के बरतनों के द्वारा रघु को आदरातिथ्य करता देख कर कौत्स ने उस से कुछ भी याचना करने का विचार छोड़ दिया। राजा को आशीर्वाद कर के वह जाने लगा। रघु ने आग्रह-पूर्वक उसे रोक रक्खा और दूसरे दिन स्वर्ग पर चढ़ाई कर के इन्द्र

और कुबेर से धन लाने की युक्ति सोची। रघु चक्रवर्ती राजा था, इस से इन्द्र और कुबेर भी उस के मांडलिक थे। ब्राह्मण को दान करने के लिए उन से कर वसूल करने में संकोच किस बात का? रघुराजा की चढ़ाई की बात सुन कर देवता डर गये—उन्हों ने एक शमी के पेड़ पर सुवर्ण-मुद्रा की वृष्टि की। रघुराजा ने सुबह उठ कर देखा तो जितना चाहिए उतना सुवर्ण मौजूद है। उस ने वह ढेर कौत्स को दे दिया। कौत्स चौदह करोड़ से अधिक लेता नहीं था और राजा दान में दिया धन वापस नहीं चाहता था। अन्त को उस ने वह धन नगर-वासियों को लुटा दिया। वह दिन था—आश्विन सुदी १०। इस से आज भी लोग दशहरे के दिन शमी का पूजन कर के उस के पत्तों को सोना समझ कर लूटते हैं और एक दूसरे को देते हैं। कितने ही लोग शमी के नीचे की मिट्टी को भी सुवर्ण मान कर ले जाते हैं।

शमी का पूजन बहुत प्राचीन है। ऐसा माना जाता है कि शमी के पेड़ में ऋषियों का तपस्तेज है। प्राचीन समय में शमी की लकड़ी एक दूसरी पर घिस कर आग सुलगाते थे। शमी की समिधा आहुति के काम आती है। पाण्डव जब अज्ञातवास करने गये थे, तब उन्हों ने अपने हथियार एक शमी के पेड़ पर छिपा रक्खे थे। और इसलिए कि कोई वहाँ जा न पाये, एक नर-कंकाल उस पेड़ में बाँध रक्खा था।

राम ने रावण पर जो चढ़ाई की सो भी विजया-दशमी मुहूर्त पर। आर्य लोगों ने—हिन्दू लोगों ने—अनेक बार विजया-दशमी के मुहूर्त पर चढ़ाई कर के विजय प्राप्त की है। इस से विजया-दशमी राष्ट्रीय विजय का मुहूर्त अथवा त्योहार

हो गया है। मराठे और राजपूत इसी मुहूर्त पर स्वराज्य की सीमा बढ़ाने के लिए शत्रु के देश पर आक्रमण करते थे। शस्त्रास्त्र से सज कर, हाथी घोड़े पर चढ़ कर, नगर के बाहर जुलूस ले जाने की प्रथा आज भी है। यहाँ शमी का और अपराजिता देवी का पूजन सीमोल्लंघन का मुख्य भाग है। पुराणों में कथा है कि महिषासुर से श्रीजगदंबा ने नौ दिन युद्ध कर के विजया-दशमी के दिन उस का वध किया। इसी से अपराजिता की पूजा और महिष (भैंसे) का बलिदान करने की प्रथा पड़ी है।

ऐसा माना जाता है कि शमी और अश्मन्तक वृक्ष में भी शत्रु के नाश करने का गुण है। अश्मन्तक कहते हैं उस्तुरा के पेड़ को। जहाँ शमी नहीं मिलती है, वहाँ उस्तुरे के पेड़ की पूजा होती है। उस्तुरे के पत्ते का आकार सोने के सिक्के की तरह गोल होता है और जुड़े हुए कार्ड (Reply Card) की तरह उस के पत्ते,मुड़े हुए होते हैं, जिस से वे खूबसूरत दिखाई देते हैं।

दशहरे के दिनों तक चौमासा लगभग समाप्त हो जाता है। शिवाजी के किसान-सैनिक दशहरे तक खेती की चिन्ता से मुक्त हो जाते थे। कुछ भी काम शेष न रहता था। केवल एक ही फ़सल काटना रह जाता थी। पर उसे तो घर की औरतें, बच्चे और बूढ़े लोग कर सकते थे। इस से सेना इकट्ठी करके स्वराज्य की सीमा बढ़ाने के लिए सब से निकटवर्ती मुहूर्त दशहरे का था। इसी कारण महाराष्ट्र में दशहरे का त्योहार अत्यन्त लोक-प्रिय था और वह आज भी ज्यों का त्यों है।

हम देख चुके हैं कि विजया-दशमी के एक त्योहार पर अनेक संस्कारों, अनेक संस्करणों और अनेक विश्वासों की तहें चढ़ी हुई हैं। कृषि-महोत्सव क्षात्र-महोत्सव हो गया। सीमोल्लंघन का परिणाम दिग्विजय तक पहुँचा। स्व-संरक्षण के साथ सामाजिक प्रेम और धन का विभाग करने की प्रवृति का संबंध दशहरे के समय जुड़ा। परन्तु एक ऐतिहासिक घटना को अभी हम दशहरे के साथ जोड़ना भूल गये हैं, वह इस युग में अधिक महत्वपूर्ण है। "दिग्विजय से धर्मजय श्रेष्ठ है। बाह्य शत्रु का वध करने से हृदयस्थ षड्रिपुओं को मारने में ही महान् पुरुषार्थ है, नव धान्य की फसल की अपेक्षा पुण्य की फसल अधिक चिर-स्थायी होती है"—यह उपदेश सारे संसार को देने वाले मारजित्, लोकजित् भगवान् बुद्ध का जन्म विजया-दशमी के शुभ मुहूर्त में ही हुआ था। विजया-दशमी के दिन बुद्ध भगवान् का जन्म हुआ और वैशाखी पूर्णिमा के दिन उन्हें शान्तिदायी चार आर्य्य तत्वों और अष्टांगिक मार्ग का बोध हुआ, यह बात हम भूल ही गये हैं। विष्णु का वर्त्तमान अवतार बुद्ध अवतार ही है। इसलिए विजया-दशमी का त्योहार भगवान् बुद्ध के मार-विजय को स्मरण करके ही हमें मनाना चाहिए।

प्रश्न

(१) विजया-दशमी कृषि-प्रधान उत्सव कैसे है ?

(२) यह कृषि त्योहार कैसे क्षात्र-त्योहार हुआ ?

(३) इस त्योहार के समय सुवर्ण बाँटने की प्रथा कैसे चली ?

(४) शमी की महत्ता क्या है ?

(५) दशमी का सम्बन्ध अन्तिम ऐतिहासिक घटना से कैसे है?

सन्त तुकाराम

यदि हम चाहते हैं कि बङ्गाल, महाराष्ट्र और गुजरात हमारे सूर, तुलसी और मीरा का आदर करें, उन्हें आत्मीयता की दृष्टि से देखें, तो हमें भी उन के चैतन्य, तुकाराम और नरसी मेहता का सम्मान करना सीखना चाहिए, उन के प्रति अपनी श्रद्धा के दो फूल अर्पित करने को सदा तैयार रहना चाहिए। हमें यह न भूलना चाहिए कि महापुरुष किसी प्रान्त-विशेष की सम्पत्ति नहीं होते। कोई कितनी ही बाधाएँ क्यों न डाले, उन की आत्मा का प्रखर प्रकाश, छोटी-बड़ी समस्त सीमाओं को लाँघ कर, आगे-पीछे, संसार के कोने-कोने में फैले बिना नहीं रहता। राष्ट्र-भाषा हिन्दी का गौरव इसी में है कि यह अत्यन्त उदारतापूर्वक प्रत्येक भाषा और प्रान्त के रत्नों को अपने उच्च कोटि के साहित्य का एक महत्वपूर्ण अङ्ग बना कर अपना ले, और इस प्रकार अपने विपुल विस्तार और आन्तरिक वात्सल्य का परिचय दे, अन्यथा, दूसरों से अपने प्रति सच्ची सहानुभूति और आत्मीयता की आशा ज़रा कम रखे।

सन्तों, भक्तों और कवियों की वाणी और जीवनी पर विचार करते समय सब से बड़ी आवश्यकता इस बात की होती है कि हम उन के आराध्य अथवा सिद्धान्त के प्रति थोड़ी-बहुत श्रद्धा या सहानुभूति रख कर ही उन का अध्ययन करें अन्यथा हम उन के उस रूप में उन्हें न देख सकेंगे, जिस में उन्हें उन के अनुयायी या प्रेमी देखा करते हैं, और जो उन का सब से सुन्दर और सब से आनन्ददायक रूप है। 'विठ्ठल भगवान' के प्रति तनिक भी स्नेह न रखने वाले व्यक्ति का दृढ़

हृदय मीरा की उस तन्मयता, उस प्रेम और उस आत्मोत्सर्ग का कहाँ तक अनुभव कर सकेगा? तुलसी के सर्वस्व 'राम' के प्रति भक्ति का लेशमात्र भी न रखनेवाली आत्मा, सन्तप्त होने पर भी उन के 'मानस' में गोता लगा कर शीतलता का सच्चा सुख कैसे पा सकेगी? इसी प्रकार, तुकाराम का अध्ययन करने वाले भावुक को, महाराष्ट्र के प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र पंढरपुर में विराजने वाली पाण्डुरंग, विट्ठल या कृष्ण की मोहिनी मूर्ति के प्रति—जिसे वे अपना सर्वस्व, आराध्य और सगुण-निर्गुण, व्यापक-समीप या द्वैत-अद्वैत समस्त भावनाओं का एक मात्र केन्द्र समझते थे—थोड़ी-बहुत प्रीति या भक्ति रखे बिना ही उन की तन्मय अभंग वाणी के अवगाहन तथा उन के एकतारे और करताल की ताल में तल्लीन होने का पूर्ण आनन्द कैसे मिलेगा? उसे तो उन की वाणी का रस पराया-सा लगेगा, उन की कविता का झरना अपरिचित सा प्रतीत होगा। मेरे इस विचार पर, वे गम्भीर विद्वान्, जिन्हें भोले भक्तों, पागल प्रेमियों और भावुक कवियों के साथ क्षण-भर भी सहमत होना मूर्खता-सा जान पड़ता है, चाहे उपेक्षा की सूखी हँसी-हँस कर रह जायँ, पर वे सरल जिज्ञासु जनसाधारण—जो कविता का रसास्वादन करने के लिए कवि से, और भक्ति आनन्द का लूटने के लिए भक्त से क्षण भर के लिए समझौता कर लेने में कोई मान-हानि नहीं समझते—मुझे विश्वास है, अवश्य ही अप्रसन्न न होंगे।

सन्तों की कविता की उपयोगिता तर्क से क्या सिद्ध की जा सकती है? उस का प्रमाण तो प्रत्यक्ष अनुभव ही है। देखने वाले देखते हैं कि केवल पेट के लिए सारे दिन श्रम करनेवाले मामूली आदमी से लेकर अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को ठुकराकर संसार

की सेवा में दिन-रात जुटे रहने रहने वाले कर्मयोगी महात्मा तक के हृदय पर सन्तों की वाणी का समान जादू है। भरी दोपहरी में हल हाँकनेवाला भोला-भाला किसान सन्त-वाणी की जिस सरल पंक्ति को रह-रह कर गुनगुनाता जाता है, और उस से अपने कष्टों का भार कुछ हलका कर लेता है, रात-दिन राष्ट्र और जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में क्रान्ति उपस्थित करने की चेष्टा करने वाले बड़े-बड़े राजनैतिक नेता भी उसी पंक्ति का अपने कठिन समय में सहारा लेते हैं। चौबीसों घंटे संसार की जटिल समस्याएँ जिन का मस्तिष्क चाटा करती हैं, वही कभी-कभी विकल हो कर सन्तों की वाणी के ही लिग वाम की खोज में फिरते देख पड़ते हैं।

मनुष्य के जीवन की प्रवृत्ति जहाँ दिन की तरह उस से खूब काम कराती है, वहाँ उस की आत्मा की निवृत्ति उसे विश्राम भी देती है; इसलिए नहीं कि वह मुर्दे की तरह सदा के लिए सो जाये, वरन् इसलिए कि वह दूसरे दिन जुटकर काम करने के लिए शक्ति संचय करे। इन्हीं दोनों भावों के सामंजस्यपर संसार की स्थिति निर्भर है। जिस प्रकार बीज अपने को खपा देता है—इसलिए कि संसार उस से मीठे फल चक्खे, अथवा यों कहिए कि भागीरथ ने अपना जीवन घुला दिया था, इसलिए कि संसार को पुण्यसलिला भागीरथी के निर्मल शीतल जल में अपने पापों का विसर्जन करने का अवसर मिले—उसी प्रकार संसार के अनेक साधु, संत, भक्त और कवि अपने सांसारिक स्वार्थों पर सदा के लिए लात मार कर, ... के थके-माँदे पथिकों के लिए जगह-जगह शीतल और विश्राम-स्थल बना गये हैं। उन में बहुत से निवृत्तिवादी

थे, अतः हम भी यदि सदा के लिए निवृत्तिवादी बनना चाहें, तो इस का अर्थ यही होगा कि हम भी अपने को उन के समान महात्मा समझते हैं। आज तक संसार में ऐसे अनेक सन्त हो गये हैं, किन्तु साधारण जनता अभी तक उन की तरह न तो सर्वथा निवृत्तिवादी बनी है और न बनेगी। उस ने तो अपना कल्याण इसी में समझ रक्खा है कि वह उन का आदर करे, उन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करे, और जब-जब जीवन-संग्राम में लगातार प्रवृत्तियों के प्रयोग से कुछ थकान, कुछ खेद और कुछ ऊबने के-से लक्षण दीख पड़ें, तब-तब उन की वाणी की गङ्गा में अवगाहन करे, उन की भक्ति की शीतल छाया में विश्राम करे और उन के निवृत्तिवाद में जीवन के सन्तापों का क्षण भर लय कर दे। स्वयं सन्तों ने भी संसार-साधन के साथ-साथ परमार्थ-चिन्तन करने का महत्व माना है। महाराष्ट्र के साधु-सन्तों में शिवाजी महाराज के गुरुदेव श्री समर्थ रामदास स्वामी तो—"सामर्थ्य आहे चलवलोचें। जो-जो करील तयाचें। परन्तु तेथें भगवंताचें अधिष्ठान पाहिजें।" अर्थात् "आन्दोलन और आन्दोलनकारी में बड़ी भारी शक्ति है; परन्तु उस के प्रत्येक कार्य में भगवान् का अधिष्ठान होना चाहिए"—सरीखे सिद्धान्तों द्वारा धर्म और राजनीति—निवृत्ति और प्रवृत्ति का एकीकरण करके अमर हो ही गये हैं। संत तुकाराम ने भी एक बार, जब उन का कीर्तन सुन कर शिवाजी को संसार से वैराग्य हो गया था—उन का ध्यान फिर ससार की ओर दिलाया था। इन के अतिरिक्त और भी अनेक संत, जहाँ एक ओर संसार से विरक्त हो कर निवृत्तिवाद का सहारा लेते हैं, वहीं दूसरी ओर अपने आराध्य की अनन्य

उपासना करने के नाते प्रवृत्तिवाद का क्रियात्मक समर्थन करते हैं।

महाराष्ट्र के संत कवियों पर विस्तृत दृष्टि डालने तथा वहाँ के जन-साधारण का कुछ परिचय प्राप्त करने से मालूम होता है कि वहाँ के बाल, युवा, वृद्ध, निर्धन, धनिक शिक्षित, अशिक्षित, स्त्री, पुरुष, सर्वसाधारण में समान रूप से तुकाराम की वाणी का जितना प्रचार और प्रभाव है, उतना और किसी का नहीं। तुकाराम की यह सब से बड़ी विशेषता है, जो अपनी ओर प्रत्येक सहृदय का हृदय बरबस खींच लेती है। उन की भाषा और भाव, दोनों जितने ही सरल हैं, उतने ही आकर्षक भी हैं। वे वास्तव में जन-साधारण के कवि थे। आज भी उन के अनेक अभंग—मराठी छन्द-विशेष—महाराष्ट्र के कोने-कोने में कीर्त्तनकारों के स्वरों में मिल कर गूँज रहे हैं—प्रत्येक ग्राम-वासी की जिह्वा पर विद्यमान हैं। महाराष्ट्र के जन-साधारण आज भी तुकाराम के अभंग सुनते-सुनते रोमांचित और तन्मय होते देखे जाते हैं। यों तो मराठी का अधिकांश प्राचीन साहित्य—संभवतः विदेशियों की विलास-भावनाओं के संसर्ग से बचा रहने के कारण—भक्ति-रस से ओत-प्रोत भरा पड़ा है, तथापि महाराष्ट्र की भावुकता और भक्ति-भावना की अमर संस्कृति का निर्माण करने वाले युगान्तर-कारी संत-कवियों में तुकाराम का स्थान बहुत ऊँचा है।

विद्यार्थी-जीवन में जब हम लोग अकोला के अपने गुरुवर श्री रघुनाथ गणेश पंडित से मराठी पढ़ा करते थे, तब मुझे खूब याद है कि वे मराठी के 'केशव' कविवर मोरो पंत की कई मराठी पंक्तियों का, अनायास ही पढ़ाते-पढ़ाते केवल विभक्ति

प्रत्यय बदल कर उन्हीं शब्दों और उसी छंद में, संस्कृत रूपान्तर कर दिया करते थे, जिस से हँसी-हँसी में मोरो पंत की संस्कृत बहुल क्लिष्ट भाषा-शैली पर काफ़ी प्रकाश पड़ जाया करता था। तुकाराम के चुने हुए अभंगों का साधारण अध्ययन हम लोग उस के पहले ही कर चुके थे, अतः मुझे उस समय उक्त दोनों मराठी कवियों की भाषा-शैली के अन्तर पर एक दृष्टि डालने का अवसर कई बार मिला करता था। मोरो पंत की भाषा जहाँ बात-बात में संस्कृत से शब्द उधार लेने की आदी है, वहाँ तुकाराम की भाषा के द्वारा जन-साधारण के प्रिय, सरल और प्रचलित शब्दों का उच्च कोटि के साहित्य में प्रवेश होकर मराठी का 'अपना' शब्द-भंडार खूब भरा गया है। मराठी भाषा को स्वावलम्बी बनाने में तुकाराम का कितना हाथ है, वह उस की प्रगति का अध्ययन करने वालों से छिपा नहीं है। उन के ऋण से उऋण हो सकना मराठी वालों के लिए कठिन है।

तुलीदास जी की तरह उन्हों ने भी अधिकतर "स्वान्तः सुखाय" ही लिखा है। जो कवि केवल ख्याति, धन या अन्य सांसारिक प्रलोभनों के कारण ज़बर्दस्ती अपना पांडित्य बघारा करते हैं, उन की रचना का प्रचार उतना नहीं होता, जितना केवल आत्म-संतोष के लिए लिखने वाले भोले-भाले कवियों की सरल वाणी का होता है। तुकाराम और तुलसीदास की सफलता का रहस्य भी इसी में है। यही कारण है कि सरल हृदय जनता पर तुकाराम के भोलेपन का जादू चल गया, और आज लगभग ३०० वर्ष बाद भी उन की सीधी-सादी पंक्तियों में हमें इतनी सरलता, इतनी सरसता, इतनी तन्मयता, इतना त्याग, इतनी सहृदयता और इतना आकर्षण मिलता है। उन्हें पाठकों

की बुद्धि को परास्त कर देने वाले शब्दाडम्बर की आड़ में कविता के नाम पर पहेलियाँ बुझाने का शौक नहीं था; तभी तो, उन्हों ने जो कुछ लिखा है, जनता ने उसे भली प्रकार अपनाया है; क्योंकि उसे उन की प्रत्येक पंक्ति में अपने हृदय के भाव और अपनी ही भाषा मिलती है। उन की कविता खेल-खेल में मानव-जीवन की छिपी हुई पावन प्रवृत्तियों को जागृत कर देती है। प्रसादगुण वास्तव में तुकाराम की वह सम्पत्ति है, जो जन्म-जन्मान्तर की तपस्या के बाद बहुत कम कवियों को मिला करती है।

यद्यपि तुकाराम के एक-आध मर्मज्ञ आजकल इसे भी सिद्ध कर दिखाने का दावा करते हैं कि कला के "सत्यं, शिवं, सुन्दरम्" तीनों स्वरूपों में से उन की कविता में 'सुन्दरम्' का समावेश सब से अधिक हुआ है, और वे कोरी कविता की दृष्टि से भी संसार के कवियों में बहुत ऊँचा आसन पाने योग्य हैं, तथापि सामान्य जनता तो उन की कला के शेष दो स्वरूप 'सत्यं' और 'शिवम्' पर ही क्रमशः अधिकाधिक मुग्ध है। जहाँ एक ओर, धार्मिकता के रूप में छिपे हुए पाखण्ड की अन्धेरी छाया पर वे जब सत्य का प्रखर प्रकाश बड़ी ही मधुरता एवं मार्मिकता से डालते हैं, तब प्रत्येक सहृदय उन की अपूर्व उपमाओं तथा चुभते हुए उद्गारों का अनुभव करके फड़क उठता है, वहीं दूसरी ओर जब उस से कहीं बढ़ कर सफलता से वे अपने आराध्य के चिन्तन, भजन और कीर्त्तन में बिलकुल तन्मय हो कर कहते हैं कि, "तुका झाला पांडुरंग" अर्थात् तुकाराम पांडुरंग हो गया" तब प्रत्येक हृदय वाले को उन की भावना में अपना आपा भूल कर लीन हो जाना पड़ता है। 'सुन्दरम्' तुकाराम के 'शिवम्' और 'सत्यम्' के पीछे-पीछे चलता है, आगे नहीं।

उन के लिए तो उन का प्यारा 'शिवम्' ही 'सत्यम्' है, और 'सत्यम्' तो 'सुन्दरम्' होता ही है। तुकाराम कवि से बढ़कर भक्त हैं और भक्त से बढ़ कर कवि हैं। वे कुछ भी हैं;परन्तु बड़े निष्कपट हैं, बड़े सरल हैं, बड़े सहृदय हैं, बड़े भावुक हैं, बड़े तन्मय हैं और बड़े उदार हैं। उन की भोली वाणी के प्रसाद-प्रवाह में तन्मय हो कर बहने लगना सहृदय के लिए बिलकुल स्वाभाविक है।

तुकाराम के काल-निर्णय के विषय में महाराष्ट्र के विद्वानों में बड़ा मत-भेद है। उन सब मतों का सूक्ष्म और विशद विवेचन करने में लेख का विस्तार बहुत बढ़ जायगा। अतः हम थोड़े में ही कुछ प्रामाणिक विद्वानों का मत यहाँ दे रहे हैं। स्वर्गीय परशुराम तात्या गोड़बोले 'महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश' सरीखे विशाल और माननीय ग्रन्थ के विद्वान् सम्पादक, और 'तुकाराम-चरित्र' के प्रवीण प्रणेता श्रीलक्ष्मण रामचन्द्र पांगारकर आदि सर्वमान्य लेखकों ने तुकाराम का जन्मकाल शाके १५३० अर्थात् सन् १६०८ ई० माना है। प्रयाणकाल के विषय में इन में भी मतभेद है। स्व० श्री परशुराम तात्या ने उसे सन् १६४९ ई० अर्थात् शाके १५७१ की फाल्गुन बदी १२, श्रीपांगारकर ने फाल्गुन बदी २ तथा ज्ञानकोश के सम्पादकों ने उस के दो वर्ष बाद अर्थात् शाके १५७३ या सन् १६५१ ई० माना है। आयु के २६ वें वर्ष के लगभग उन्हें कवित्व-स्फूर्ति हुई, और उस के चार साल पहले वैराग्य। १३ वर्ष की आयु में उन के गले में सांसारिक झंझटें डाल कर उन के १७ वर्ष के होते-न-होते उन के पिता श्रीबाल्होबा तथा माता श्रीकनकाई ने शरीर छोड़ दिया था। स्वयं तुकाराम भी इस दुनियाँ में

४३ वर्ष से अधिक न रहे। अपने १५ वर्ष के छोटे से कवित्व-काल में उन्हों ने छः से आठ हज़ार तक अभंग रच डाले थे। कहते हैं कि ये एकान्त में बैठ कर भगवान् के चरणों में तत्काल बना-बना कर सैकड़ों अभंग अर्पण कर दिया करते थे, फलतः उन की रचनाओं का एक बड़ा भाग संसार की दृष्टि से छिपा ही रह गया। उन के शिष्य या सत्संगी जो कुछ भी लिख कर सुरक्षित रख सके हैं, उसका अधिकांश भाग छप कर प्रकाशित हो गया है। गोसाईं जी के मानस अथवा कबीर के पदों की तरह उन के अभंगों में भी कुछ क्षेपक हैं, जिन्हें लोगों ने पीछे से मिला दिया है। हिन्दी के कई पुराने कवि, जिस प्रकार अलग-अलग कवित्तों के रूप में लिखा करते थे, उसी प्रकार तुकाराम ने भी प्रायः स्फुट 'अभंग' लिखे हैं। अभंग छन्द तुकाराम के पहले भी लिखा गया और पीछे भी, पर उन्हें कोई न पा सका। जैसे हिन्दी में तुलसी की चौपाई, रहीम की बरवै और बिहारी की दोहा तथा मराठी में ज्ञानेश्वर की ओवी, मोरोपंत की आर्या और वामन पण्डित की श्लोक का प्रयोग खूब सधा है, वैसे ही अभंग तुकाराम की 'अपनी चीज़' बन गया है। यहाँ तक कि जब ये कीर्तन करते थे, तो बड़ी सुगमता से सुन्दर-सुन्दर अभंग तत्काल बना-बनाकर गाते जाते थे।

तुकाराम की जन्मभूमि 'देहू' पूना के पास इन्द्रायणी नदी के तट पर एक छोटा-सा गाँव है। इन के पूर्वज जन्मना शूद्र और कर्मणा वैश्य थे। परमार्थ चिन्तन करते-करते इन में ब्राह्मणत्व के लक्षण आ गये थे। एक बार जब इन्हें गाँव से निर्वासित होना पड़ा था, तो ये एक शिला पर १३ दिन तक अनशन और सत्याग्रह किये पड़े रहे थे, और इस प्रकार क्षत्रियों के

समान दृढ़ता भी प्रकट कर चुके थे । वैसे ये स्वभाव के बड़े भोले थे । अहिंसा और भूत दया तो इन के रोम-रोम में भरी थी। यहाँ तक कि ये राह चलते बटोही का भार बँटा लेते, किसी के खेत की रखवाली किया करते तो किसी की गौएँ चरा लाते, किसी बीमार की टहल करते तो किसी भीगे हुए को अपने सूखे कपड़े उतार कर दे देते । कोई साधु-सन्त या भक्त पंढरपुर की यात्रा करने को उधर से गुज़रता, तो ये उस के पैरों की सूजन पर सेंक किया करते। गाँव के छोटे-बड़े प्राणी काम-काज समाप्त करके, रात को इकट्ठे हो कर, इन के साथ जात-पाँत का भेद-भाव भूल कर,तन्मय हो कर,दो घड़ी भजन-कीर्त्तन किया करते। यही इन का सब से प्यारा व्यवसाय था। जो लोग इन की सरल कविता से ब्राह्मणों की मौरूसी भक्ति के पवित्र और गुप्त ज्ञान को इस प्रकार सुगमता से जनसाधारण में बँटते देख कर कुपित रहा करते थे, वे उन के इस प्रचार-कार्य को अधिक न सह सके, और उन्हों ने इन्हें हर तरह से कष्ट देना प्रारम्भ किया, पर ये अटल बने रहे । इन की पत्नी जिजाई सांसारिक स्त्री थी, अतः उसे भी इन का भक्ति-वैराग्य अरुचिकर था । किन्तु तुकाराम उस की कलह से भी कभी विचलित न हुए। अन्त में उस ने भी इन का विरोध कम कर दिया, और भामनाथ की टेकड़ियों पर इन के लिए बराबर भोजनादि पहुँचाती रही। पर, तुकाराम अपने भजन-कीर्त्तन में इतने तन्मय रहते थे कि उन्हें खाने-पीने की ज़रा भी सुध न रहती थी।

इस प्रकार अपने छोटे से जीवन से महाराष्ट्र को त्याग, तन्मयता और परमार्थ का अमर पाठ पढ़ा कर यह भोला-भाला

भक्त एक दिन कीर्त्तन करते-करते निज-धाम को चला गया। संसार के प्रत्येक महापुरुष के पीछे श्रद्धातिरेक से उनके भक्त जो सम्भव या असम्भव किम्वदन्तियाँ प्रचलित कर देते हैं, ये महात्मा भी उन से न बचे। इन के अद्भुत चमत्कार, सगुण-ईश्वर-साक्षात्कार और सदेह स्वर्ग जाने की जन श्रुति के सत्यासत्य का निर्णय करने को हमारे पास कोई सर्वमान्य साधन नहीं है, अतः इस विषय में कुछ न कह कर हम केवल उन की लगन, उदारता दयालुता, सरलता, सहृदयता, तन्मयता और स्वाभाविक कविता ही के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करके यह निबन्ध समाप्त करते हैं।

प्रश्न

(१) सन्तों की जीवनी पर विचार करते हुए किस बात को मन में रखना चाहिए।

(२) सन्त तुकाराम की सबसे बड़ी विशेषता क्या है?

(३) मोरोपन्त और तुकाराम की काव्य-शैली में क्या अन्तर है।

(४) तुलसीदास की तरह इन्हों ने भी 'स्वान्तः सुखाय' ही लिखा है—इस का क्या अर्थ?

(५) 'भूत-दया उन के रोम रोम में बसी थी'—इस के उदाहरण दो।

केंचुए का महत्व

संसार में किसी वस्तु को तुच्छ न समझना चाहिए। संसार के सब प्राणी ईश्वर ने बनाये हैं। हम को कोई अधिकार नहीं कि उन को किसी प्रकार कष्ट दें। इतना ही नहीं, न मालूम किसी छोटे से जीव से संसार में क्या काम निकलता हो, या निकले। प्रकृति की अद्भुत लीला का पारावार नहीं है। क्या पता था कि ज़रा सी भाप से इतने बड़े इञ्जन की उत्पत्ति होगी? कौन जानता था कि साधुओं के माला फेर कर घास पर रख देने से और घास के खिंच आने से विद्युत्शास्त्र की नींव पड़ेगी। इसी प्रकार केंचुए भी तुच्छ दृष्टि से देखे जाते थे और उन की कोई परवाह न करता था। जीव-विज्ञान के न जानने वाले अब भी इस के गुणों को नहीं जानते।

पहले इस छोटे से जानवर के बारे में हम लोगों को कुछ विशेष मालूम न था। सम्वत् १८३४ वि० में व्हाइट नामक एक प्रकृतिवेत्ता ने एक मित्र को लिखा—"छोटे से छोटे कीड़े-मकोड़े भी इतने काम के होते हैं और प्रकृति के मितव्यय में इतनी सहायता करते हैं कि मामूली लोग उस का अनुभव नहीं कर सकते। वह इतने छोटे होते हैं कि मनुष्यमात्र का ध्यान उन की ओर नहीं जाता और इस कारण वे अपना काम बे-रोक-टोक बड़े वेग के साथ करते हैं। केंचुआ देखने में चाहे तुच्छ हो और प्रकृति की जंजीर का एक हीन ही कड़ा क्यों न हो, परन्तु यदि संसार से निकाल दिया जाये तो अनर्थ ही हो जाय। इनसे वनस्पतियों के उगने में बड़ी सहायता मिलती है। यह पृथ्वी को छेद कर मिट्टी को पोली बना देते हैं और इसी से

बरसात का पानी और पौधों की जड़ें आसानी से पृथ्वी में प्रवेश कर सकती हैं। उन के शरीर में से सेवईं की तरह जो मिट्टी निकलती है, वह बड़ी ही महीन होती है और खेती-बारी में वह पौधों के उगने और उन के बढ़ने में बड़ी सहायता देती है।" यह डारविन ने लिखा तो अवश्य, परन्तु केंचुए के विषय में डारविन ने इस से भी पूर्व भली प्रकार अपनी एक पुस्तक में लिखा था। बरसों उस ने बड़ी छान-बीन और परिश्रम किया और तब संसार को पता लगा कि जिस जन्तु को हम लोग बिल्कुल बेकाम, भद्दा और निकृष्ट समझ रहे थे, वह वास्तव में मनुष्य-जाति का उपकारक और सहायक है।

जिस समय डारविन केंचुए के रहन-सहन, और उस के जीवन रहस्य के पता लगाने में कठिन परिश्रम कर रहा था, उस के एक मित्र ने कहा कि ऐसी तुच्छ वस्तु पर इतना परिश्रम और समय लगाना बिल्कुल भूल है। परन्तु डारविन अच्छी तरह समझता था कि उस का परिश्रम व्यर्थ न होगा।

केंचुए का रहन-सहन

केंचुए का शरीर अच्छी तरह देखने से पता लगता है कि वह छोटे-छोटे छल्लों से मिल कर बना हुआ है। भिन्न-भिन्न स्थानों के केंचुओं में छल्लों की भिन्न-भिन्न संख्यायें होती हैं। केंचुए के पेट की ओर दो दो छोटे-छोटे महीन कड़े बाल के दो जोड़ होते हैं। यह बाल कुछ पीछे की ओर झुके रहते हैं और इस कारण पीछे को ओर केंचुआ नहीं हट सकता; क्योंकि जब पीछे हटने लगता है, तो यह बाल पृथ्वी में धँस जाते हैं। की ओर का भाग नोकीला होता है। मुँह के ऊपर कुछ भाग साहब लोगों की टोपी की तरह झुका रहता है।

इसी की सहायता से वह पत्ती के टुकड़े तथा भोज्य-पदार्थ उठा सकता है। हाथी की सूँड़ की अँगुली की भाँति इस में भी बड़ी सचेतनता होती है। यह तो लोग जानते ही हैं कि इस के आँख नहीं होती, लेकिन आगे का भाग प्रकाश से संचेत्य होता है। उस को अँधेरे-उजाले का पता लग जाता है, और इसी कारण दिन में कम निकलता है। बरसात में उस के बिल में पानी चले जाने से वह दिन में निकल आता है, नहीं तो रात में ही निकल कर चरता और हवा खाता है। इस के कान भी नहीं होते और न शब्द सुन सकता है, परन्तु पृथ्वी के हिलाव को तुरन्त जान जाता है।

वह रहने के लिए बड़े लम्बे-लम्बे बिल बनाता है। तीन या चार फुट तक इस के बिल गहरे होते हैं। नरम और सुकोमल भूमि, जैसे जुते हुए खेत में, वह केवल अपने मुँह को नीचे कर के बरमा की तरह छेदता हुआ चला जाता है। छेदते समय उस के शरीर लगने के कारण बिल की दीवार बिलकुल चिकनी हो जाती है और उस के शरीर के छेदों में से पसीने की भाँति एक तरल पदार्थ निकलता है, जिस से बिल के दीवारों पर पलस्तर हो जाता है और दीवार एक दम गिर नहीं सकती। परन्तु जब कड़ी मिट्टी से मुक़ाबला करना होता है, या किसी प्रकार से मिट्टी ऐसी हो जाती है कि वह अपने शरीर से छेद नहीं सकता, तो वह मिट्टी खाने लगता है। जो मिट्टी वह खाता है, वह मुँह में से गले में जाती है। गले के बाद एक S की शक्ल की नाली होती है, उस में चली जाती है। इस के बाद एक माँस की चक्की होती है, जिस में दो छोटे-छोटे पत्थर भी होते हैं। इन्हीं पत्थरों की सहायता से कड़ी मिट्टी

अथवा पत्थर के कण या और छोटे-छोटे कड़े पदार्थ पीसे जाते हैं। यहाँ से पिस कर और बारीक हो कर मिट्टी पेट में जाती है। पेट के भीतर मिट्टी में मिले हुए जो छोटे जानवर अथवा पत्तियाँ हों वह पच जाती हैं। शेष मिट्टी, पेट के अन्दर के भोजन पचाने वाले पदार्थों से (digestive juices) मिल कर पीछे के एक छेद से सेवईं के रूप में बाहर निकल आती है। इस को जन्तु-मलत्याग ('Worms castings') कहते हैं। दिन भर केंचुआ बिल के भीतर रहता है और रात को भी जब बाहर निकलता है, तब अपनी दुम या पिछला भाग बिल के पास ही रखता है। इसलिए यदि कोई भय हो तो तुरन्त सारा शरीर बिल में खींच ले। केंचुआ जो मिट्टी खाता है वही उस का भोजन नहीं होता। इस के अतिरिक्त यह सड़ी पत्तियाँ और घास-पात भी खाता है। ऐसा करने के लिए यह अपनी दुम का थोड़ा भाग छोड़ कर सब धड़ बिल के बाहर निकाल लेता है और यथाशक्ति अपने शरीर को लंबा करता है। इस के बाद एक गोलाकार में जो कुछ पाता है झाड़ू की तरह बिल के मुँह पर बटोर लेता है और तब बिल में उतर कर थोड़ा-थोड़ा खाता है। जो थोड़ी-सी पत्तियाँ ऊपर से अपने भीतर की कोठरी में ले जाता है, उन्हें मुँह में से एक प्रकार का लुआब निकाल कर ढक देता है। यह भी एक प्रकार का पाचय पदार्थ है। इस से पत्तियाँ नरम हो जाती हैं और केंचुआ अपने बेदाँत मगर मज़बूत मुँह से कुतुर सकता है। दिन में अपना बिल केंचुआ पत्तियों से ढक देता है। एक तो इसलिए कि बिल का मुँह छिपा रहे, दूसरे यह कि गर्मी और धूप से उस का बिल सूखने न लगे, क्योंकि केंचुआ नम बिल में ही रह सकता है।

केंचुए से खेती-बारी में क्या लाभ होता है, इस में बहुत कुछ तो अभी मालूम हो गया होगा। बिल, जो कई इंच गहरे होते हैं, इन से पृथ्वी के भीतर हवा और पानी की बूँदें सरलता से प्रवेश करती हैं, और पेड़ों की महीन जड़ें भी सुगमता से पृथ्वी के भीतर जाती हैं, जिस से उन्हें खूब भोजन और तरावट मिलती है। जब केंचुए बिल छोड़ देते हैं, तो वह कुछ समय में गिर कर चूर-चूर हो जाते हैं। और इस प्रकार से धीरे-धीरे परन्तु निरन्तर मिट्टी एक स्थान से दूसरे स्थान को चला करती है। नीचे की मिट्टी ऊपर आती है जिस पर हवा, पानी का खूब प्रभाव होता है। ऊपर की भी मिट्टी इसी प्रकार नीचे जाती है।

सड़ी हुई पत्तियाँ जो केंचुआ बिल के भीतर ले जाता है पौदों के उगने में बड़ी सहायक होती हैं। लुआव, जिस से कि पत्तियाँ ढकी रहती हैं, वह तो पौदों के लिए सोने में सुहागे का काम देता है। ऊपर जो 'सेवई' होती हैं वह क्या हैं? नीचे के तह की उत्तम मिट्टी, जिसे केंचुए ने और भी महीन पीस दी है, ऊपर पृथ्वी की सतह पर आ जाती है और इस प्रकार पृथ्वी के ऊपर की सतह सुन्दर महीन मिट्टी से ढक जाती है।

डारविन ने किस प्रकार अनुसन्धान किया, उस का भी उल्लेख आवश्यक है। अपने कमरे के चारों तरफ़ उस ने गमलों में केंचुए पाल रक्खे, और बराबर उन को देखता रहा कि उन्हें किस प्रकार का भोजन रुचिकर है? किस प्रकार से ये दो-चार प्रकार के भोज्य-पदार्थों में से अपने रुचि के भोजन को चुन लेते हैं? कैसे यह अन्य-अन्य प्रकार की पत्तियों को

खींचते हैं ? एक दिन में कितनी मिट्टी उन के पेट में से निकलती है ? सुश्राव का पत्तियों पर क्या प्रभाव पड़ता है ? किस समय वह बड़े फुरतीले होते हैं ? इत्यादि। यह भी समझ कर कि शायद गमलों की तंग जगह अथवा घर में रखने में उन के रहन-सहन में कुछ परिवर्तन हो जाय, रात को लालटेन ले कर खेतों में जाकर भी वह देख-माल किया करता था।

इस के अतिरिक्त उस ने और भी देख-माल शुरू की। पत्थर के ढोके देखे गये। यह पाया गया कि वह धीरे-धीरे धंसते जाते हैं। फिर यह देखा गया कि वह किस हिसाब से धस रहे हैं। एक खेत में कुछ हिस्से पर खड़िया के छोटे-छोटे टुकड़े बिछा दिये गये। तीस वर्ष तक ज्यों का त्यों वह खेत पड़ा रहा। इस के बाद पृथ्वी की सतह के सात इंच नीचे खड़िया के ढोके बिछे हुए पाये गये। दूसरे खेत में कड़े पत्थर के टुकड़े बिछा दिये गये। इसे भी तीस साल तक छोड़ दिया। तीस साल के बाद सुगमता से उस पर घोड़ा दौड़ाया जा सकता था और पत्थर ला पता थे।

एक और जाँच की गयी। वह इस से भी ठीक थी। खेत में एक गज़ लंबी और एक गज़ चौड़ी ज़मीन नाप ली गयी और सैकड़ों ऐसे टुकड़े नाप कर निशान कर छोड़ दिये गये। एक साल तक बराबर हर टुकड़े की रोज़ जाँच होती रही, साल भर में एक-एक वर्ग-गज़ की 'सेंवई' वाली मिट्टी तौली गयी फ़ी वर्ग गज़ एक सेर ११ छटाँक पायी गयी। इस से यह स्पष्ट हुआ कि ऐसे ही एक एकड़ ज़मीन पर साल भर में लगभग १६२ मन मिट्टी नीचे से ऊपर आती है!

इतिहास में बहुत ही प्राचीन काल में हल का वर्णन आता है। इस यंत्र का आविष्कार बहुत ही प्राचीन काल में हुआ था, परन्तु उस के पहले भी खेत इस प्राकृतिक हलद्वारा जोता जाता था। अब भी यह प्राकृतिक हल मनुष्य के काम को सुगम करता है तथा उसे सहायता देता है। संभव है कि ऐसे और जानवर हों जिन का पता अभी मनुष्य को नहीं मिला है और वह भी मानव-जाति को सहायता देते हों।

परन्तु हमें यह न समझना चाहिए कि केंचुए जान-बूझ कर हम लोगों को मदद दे रहे हैं अथवा वे इस बात की चेष्टा करते हैं कि मनुष्य-जाति को लाभ पहुँचे। बल्कि इस के विपरीत गोभी तथा छोटे-छोटे नरम पौदों को कुतर कर वे हम लोगों को हानि भी पहुँचाते हैं। गाजर और अजवायन जब नयी-नयीं पत्तियाँ पृथ्वी के भीतर से फेंकती हैं, तब तो ये उन को बेतरह खाते हैं। फिर भी इन की जाति से मानव-जाति को कोई विशेष हानि नहीं पहुँच सकती।

हम लोगों के अतिरिक्त और जीव-जन्तुओं को भी इन से लाभ ही पहुँचता है। गोजर तो इन के बिलों में घुस जाता है और इन का खूब भोजन करता है। तीतर, श्यामा इत्यादि ज्यों ही इन का सर बिल के बाहर देखते हैं, तुरन्त चोंच में पकड़ कर पेट में पहुँचाने की कोशिश करते हैं। केंचुए केवल अपना जीवन पूरा करते रहते हैं और अनजान में उन से लाभ भी पहुँच जाता है।

संसार के प्रत्येक हिस्से में १०,००० फुट ऊँची पृथ्वी तक में केंचुए पाये जाते हैं। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, उन के

रहने के लिए कुछ नमी की आवश्यकता है, इस कारण बहुत सूखे स्थान में ये नहीं रह सकते। एक ही देश में भिन्न-भिन्न स्थानों पर के केंचुओं की बनावट भिन्न हो जाती है। उन का प्रयोजन, उन के शारीरिक धर्म, उन की भीतरी बनावट इत्यादि भी विचित्र होती हैं।

प्रश्न

(१) संसार में छोटी-छोटी बातों से भी कितना लाभ हो सकता है—इस के उदाहरण दो ?

(२) डारविन ने केंचुए के विषय में क्या-क्या खोज की ?

(३) केंचुए के खान-पान और रहन-सहन के विषय में क्या जानते हो ?

(४) केंचुआ प्राकृतिक हल क्यों कहलाता है ?

(५) केंचुए के जीवन से क्या-क्या लाभ हैं ?

"किम कार्यं कदर्याणाम्"

दुष्ट क्या बुरा काम नहीं कर सकते ?

ग्रीष्म की ऋतु है। जेठ का महीना है। दोपहर का समय है। सब ओर सन्नाटा छा रहा है। तिग्मांशु की तीखी खरतर किरणों से समस्त ब्रह्माण्ड तचे लोहपिंड का अनुहार कर रहा है। क्या स्थावर, क्या जङ्गम, यावत् पदार्थ सब पानी-ही-पानी रट रहे हैं। जिसे छुओ, वही अङ्गारे-सा गरम बोध होता है, मानो त्वगिन्द्रिय शीत-स्पर्श से निराश हो जल में शैत्य का गुण निर्देश करने वाले (शीतस्पर्शत्वाप:) कणाद महामुनि की बुद्धि का भ्रम मान बैठी है। एक तो अत्यन्त दंडायमान दिन, उस में ललाटंतप चंडांशु के प्रचंड आतप के ताप से संतप्त, शीतल छाया का सहारा लिये हुए, यह जंगम जगत् भी स्थिरभाव धारण कर, मौन अवस्था में, दुखःदायी ग्रीष्म के उच्चाटन का मानो मंत्र-सा जप रहा है। जंगम जगत की इस मौन दशा में कभी-कभी पुराने खँडहरों पर बैठी चील का भयंकर किकियाना, जो कानों को व्यथा पहुँचा रहा है, सो मानो बीच-बीच में उस उच्चाटन मंत्र की सुमरनी पूरी होने का पता देता है। प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ, घर-घर सब लोग भोजन के उपरान्त विश्राम-सुख का अनुभव कर रहे हैं; नीन्द आजाने पर पंखा हाथ से छुट गया है, खुर्राटे भरने लगे हैं। स्त्रियाँ गृहस्थी के काम-काज से छुटकारा पा दुधमुँहे बालकों को खिला रही हैं। कोई-कोई बालक-बालिकाओं को इकट्ठे कर उन के रिझाने वाली कहानियाँ कह रही हैं। कोई-कोई नवोढा अपनी हमजोली सखी-सहेली को गतरात्रि में अनुभूत प्राणनाथ के प्रेमालाप की कथा सुना

अंकुर का बीजमार करने वाला अकाल जलदोदय के समान यही मनुष्य था। यद्यपि अनन्तपुर में सेठ के घराने से इस कदर्य का पुराना सम्बन्ध था, किन्तु सेठ हीराचन्द के जीते जी इस का केवल आना-जाना मात्र था। इस के घिनौने काम और दुराचार से हीराचन्द सदा घृणा रखते थे। इस कारण जब-तब इसे ऐसी फटकार बतलाते थे कि सेठ के घराने से अत्यन्त घिष्ट-पिष्ट रखने की इस की हिम्मत न होती थी। पाठक-जन, यह सेठ जी के पूज्य पुरोहित के घराने का था। नाम इस का बसन्तराम था; पर सब लोग इसे बसन्ता-बसन्ता कहा करते थे। नाक फमड़ी, होठ मोटे, आँख घुच्चु-सी, माथा बीच में गड्ढेदार, चेहरा गोल, रँग काला-मानों अंजनगिरि का एक टुकड़ा हो। पढ़ना-लिखना तो इस के लिए "काला अक्षर भैंस बराबर" था। जब यह माँ के गर्भ में था, तभी इस के बाप ने यमपुर की राह ली। केवल नाम मात्र के ब्राह्मण। इन पुरोहितों की पहिले तो सृष्टि ही निराली होती है। पुरोहती कर्म से जीने वाले यदि सौ-पचास इकट्ठे किये जायँ तो विरले एक-दो ही उन में ऐसे निकलेंगे जो आवारगी, उजड्डपन और छिछोरेपन से खाली हों।

प्रश्न

(१) अपने शब्दों में दोपहर के समय का वर्णन करो।
(२) पुरोहित का वर्णन अपने शब्दों में करो।
(३) उपर्युक्त लेख से उत्प्रेक्षा, उपमा और रूपक के उदाहरण दो।

टिप्पणी

महामहोपाध्याय रा० ब० पं० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा

श्री ओझा जी के पूर्वज मेवाड़ के रहने वाले थे। सिरोही राज्यान्तर्गत रोहिड़ा ग्राम में सन् १८६३ ई० में ओझा जी का जन्म हुआ। आप का अध्ययन मेट्रिक्युलेशन के पश्चात् नैयमिक रूप से थोड़ा हुआ, किन्तु आपने अपने परिश्रम से संस्कृत, प्राकृत, प्राचीन इतिहास और प्राचीन लिपि का काफ़ी अध्ययन किया।

सन् १८८८ ई० में आप उदयपुर में इतिहास कार्य्यालय में मन्त्री नियत हुए। इस के पश्चात् वहाँ की म्यूज़ियम लाइब्रेरी के अध्यक्ष हुए और इस समय आप अजमेर म्यूज़ियम (अजायबघर) के अध्यक्ष हैं। ओझा जी हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के प्रधान भी रह चुके हैं। गत वर्ष 'हिन्दुस्थानी एकेडमी' की ओर से आप प्राचीन इतिहास पर व्याख्यान देने के लिए निमन्त्रित किये गये थे।

ओझा जी ने हिन्दी में कई अनूठे ग्रन्थ लिखे हैं। 'प्राचीन लिपि-माला' नामक ग्रन्थ ने हिन्दी का मुख उज्ज्वल कर दिया है। इतिहास सम्बन्धी कितनी ही पुस्तकें आप के हाथ से निकल चुकी हैं। अब आप 'राजपूताने का इतिहास' नामक विशद ग्रन्थ लिख रहे हैं। इस के तीन खण्ड निकल चुके हैं। इस ग्रन्थ ने इतिहास के संसार में हल-चल पैदा करदी है। इस

ग्रन्थ की प्रशंसा देश-विदेश के इतिहासज्ञ मुक्तकण्ठ से कर रहे हैं। इस की भाषा में सादगी है। इस की युक्तियें अकाट्य हैं। इसी 'राजपूताने के इतिहास' में से 'उदयपुर' शीर्षक उद्धरण लिया गया है।

\+ + + + +

२. गजथर—हाथियों की मूर्त्तियों की पंक्ति जो मन्दिर के अन्दर की दीवार पर देखने में आती हैं।

अश्वथर—घोड़ों की मूर्त्तियों की पंक्ति।

संसारथर—स्त्री पुरुषों की मूर्त्तियों की पंक्ति।

कुछ मन्दिरों में चारों ओर नाना प्रकार की पत्थर की मूर्त्तियाँ दीवार में कढ़ी रहती हैं। जहाँ पूरी पंक्ति में केवल हाथी हों, उसे गजथर कहते हैं, जहाँ केवल घोड़े ही हों, उसे अश्वथर और जहाँ सांसारिक स्त्री-पुरुषों की मूर्त्तियाँ हों, उसे संसार थर कहते हैं।

श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'

श्री मिलिन्द जी हिन्दी के उदीयमान लेखक और कवि हैं। आप मुरार (ग्वालियर स्टेट) के निवासी हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पत्रों तथा पत्रिकाओं में आप के लेख और कवितायें निकलते रहते हैं। आजकल आप कवीन्द्र रवीन्द्र के शान्ति निकेतन में हिन्दी के अध्यापक हैं।

इस संग्रह में आप के दो लेख हैं। 'कलङ्क' नामक लेख श्री मिलिन्द जी के 'प्रताप-प्रतिज्ञा' नामक नाटक का अंश है, जो

श्री हरिभाऊ जी उपाध्याय द्वारा सम्पादित 'त्याग-भूमि' के प्रतापाङ्क से लिया गया है।

× × × × ×

१०. नेपथ्य—नाटक में परदे के भीतर का वह स्थान, जिस में नट-नटी नाना प्रकार के वेश सजाते हैं।

११. मन्दाकिनी—पुराणों के अनुसार गंगा की वह धारा, जो स्वर्ग में है। आकाश-गंगा।

२. बाप्पा रावल—चारणों द्वारा वर्णित इतिहास के अनुसार वल्लभी वंश के महाराज गुहादित्य से आठवीं पीढ़ी में उत्पन्न नागादित्य का पुत्र। जब यह छोटा था, तब इस के पिता को भीलों ने मार डाला था। इस की रक्षा उस की माता और ब्राह्मण पुरोहितों ने की थी। यह नागोद में ब्राह्मणों की गायें चराया करता था। यहाँ इसे हारीत ऋषि और एकलिङ्ग शिव का दर्शन हुआ था। इस ने चित्तौर जा कर वहाँ अपना अधिकार जमाया और पश्चिम के देशों को भी विजय किया। मेवाड़ के राज-वंश का यह आदि पुरुष था। इस का जन्म-काल टॉड साहब ने सं० ७६६ वि० रक्खा है।

१२. यवन—यूनान देश में 'आयोनिया नामक प्रान्त है। जिस का लगाव पहिले पूर्वीय देशों से बहुत था, उसी के आधार पर भारतवासी इस देश के निवासियों को और तदुपरान्त भारत में यूनानियों के आने पर उन्हें भी "यवन" कहते थे। पीछे इस का अर्थ गिर गया और यह पश्चिम से आने वाले विदेशियों के लिए प्रयुक्त होने लगा।

श्री सत्यकेतु विद्यालंकार

श्री सत्यकेतु जी गुरुकुल विश्व विद्यालय काशी के स्नातक हैं। आप यहीं पर अब इतिहास के प्रोफ़ेसर हैं। आपने भारत के पुरातन इतिहास का खूब मनन किया है। हाल ही में आप का "मौर्य्य-साम्राज्य" नामक ग्रन्थरत्न 'इण्डियन प्रेस' इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है। इस वर्ष हिन्दी साहित्य-सम्मेलन की ओर से इस ग्रन्थ पर आप को १२००) का 'मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक' भी प्राप्त हुआ है। लेखक की यह रचना इस बात का प्रमाण है कि आपने संस्कृत और पाली भाषा के ग्रन्थों, शिला लेखों और ताम्रपत्रों का खूब अध्ययन किया है। हिन्दी साहित्य को इस ग्रन्थ-रत्न की प्राप्ति पर गौरव है।

श्री जयशंकरप्रसाद जी

श्री जयशङ्करप्रसाद जी हिन्दी के उच्चकोटि के गल्प-लेखक हैं। आपकी गल्पों में कल्पना का उड़ान तथा शब्द-सौन्दर्य्य आप की गल्पों की विशेषता है। हिन्दी में अच्छे गल्प-लेखक बहुत कम हैं। वास्तव में गल्प-लेखन-कला का विकास अभी आरम्भ ही हुआ है। श्री प्रसाद जी ने इस विकास में कितनी सहायता दी है, यह उन की गल्पों के पढ़ने से भले प्रकार विदित हो जाता है। प्रस्तुत गल्प "पुरस्कार" 'सस्ता साहित्य-मण्डल' अजमेर से प्रकाशित 'त्याग-भूमि' से ली गई है।

श्री महावीरप्रसाद जी द्विवेदी

आप का जन्म सं० १८२१ विक्रमी में ज़िला रायबरेली के दौलतपुर नामक ग्राम में हुआ। आप के पिता का नाम श्री रामसहाय जी था। इन की शिक्षा साधारण हुई। इन के पिता बम्बई में थे। यह वहाँ चले गये। कुछ दिन विद्याभ्यास के पश्चात् आप रेलवे में नौकर हो गये। वहाँ पर भी इन की उत्तरोत्तर उन्नति होती रही। किन्तु अपने अफ़सर से न बनने के कारण उन्हों ने त्याग-पत्र दे दिया और हिन्दी भाषा की सेवा में लग गये।

इन्हों ने 'सरस्वती' का सम्पादन बड़ी योग्यता से १५, १६ वर्ष तक किया। 'सरस्वती' के द्वारा हिन्दी भाषा की जो सेवा हुई है। उस का सम्पूर्ण श्रेय आप को ही है।

आप ने कितनी ही अँगरेज़ी पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया है। उन में "शिक्षा" हर्बर्टस्पेंसर की "एजुकेशन" नामक पुस्तक का अनुवाद है। प्रस्तुत पुस्तक में विज्ञान-विषयक लेख इसी पुस्तक में से लिया गया है।

द्विवेदी जी ने कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ संस्कृत पुस्तकों के आधार पर भी लिखे हैं। उन में रघुवंश, महाभारत तथा किरातार्जुनीय विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रस्तुत अंश, 'द्रौपदी, भीम, और युधिष्ठिर के भाषण' किरातार्जुनीय नामक पुस्तक में सार रूप से लिया गया है। यह अनुवाद अनुवाद नहीं मालूम पड़ता। पढ़ने से स्वतन्त्र लेख मालूम होता है। वास्तव में द्विवेदीजी इस में बहुत सफल हुए हैं।

'किरातार्जुनीय' भारविरचित संस्कृत का प्रसिद्ध महाकाव्य है। इस में नायक हैं अर्जुन और उपनायक दिव्य किरात रूप धारी शिवजी। अर्जुन के द्वारा पाशुपत नामक दिव्य अस्त्र की प्राप्ति, इस का मुख्य फल है।

कथा इस प्रकार से आरम्भ होती है। हस्तिनापुर से निकाले जाने पर पाँचों पाण्डव द्रौपदी सहित वन में रहने लगे। वहाँ से दुर्योधन का सार-भार देखने के लिए एक ब्रह्मचारी को जासूस बना कर हस्तिनापुर भेजा। इस ने आकर दुर्योधन के शासन की बहुत प्रशंसा की। इस पर द्रौपदी ने युधिष्ठिर महाराज की शिथिलता और सहनशीलता की बहुत निन्दा की। भीम ने द्रौपदी का पक्ष लिया। धर्ममूर्त्ति युधिष्ठिर ने पहिले तो भीम की प्रशंसा की और फिर राजनीति का रहस्य समझाया। प्रस्तुत पुस्तक में इन तीन वक्तृताओं का ही सार दिया गया है।

द्विवेदी जी की लेखन-शैली उन की अपनी ही है। हिन्दी साहित्य में द्विवेदी जी का बहुत ही ऊँचा स्थान है। उन्हें कभी भी नाम की चाह नहीं हुई। हिन्दी साहित्य सम्मेलन का सभापति उन्हें कई बार चुना, किन्तु बारम्बार उन्होंने मना कर दिया। ऐसे महान् पुरुषों का जीवन कितना स्फूर्तिदायक है।

× × × × ×

४४. महारथी—जो योद्धा अकेला दश सहस्र योद्धाओं से लड़ सके।

४७. अज्ञातवास—छिप कर रहना। विराट के यहाँ पाण्डवों ने एक वर्ष अज्ञातवास किया था।

बृहस्पति—एक प्रसिद्ध वैदिक देवता, जो अंगिरस के पुत्र और देवताओं के गुरु माने जाते हैं। यह सभी विषयों के पूर्ण पंडित थे। इन्हें देवताओं का पुरोहित भी माना है। यह बुद्धि और वक्तृता के देवता माने जाते हैं। वैदिक-काल के उपरान्त इन की गणना नवग्रह में होने लगी।

नीतिशास्त्र—वह शास्त्र जिस में देश, काल और पात्र के अनुसार बरतने के नियम हों।

४८. रामबाण ओषधि— वैद्यक में एक रस जो पारे, गन्धक, सींगिया आदि के योग से बनता है और जो अजीर्ण के लिए बहुत उपयोगी होता है। यहाँ अर्थ है—तुरन्त प्रभाव दिखाने वाला।

× × × × ×

श्री वैजनाथ महोदय

श्री वैजनाथ महोदय अजमेर के सस्ता साहित्य मण्डल के मन्त्री हैं। आप का निवास स्थान निमाड़ है। आप ने बड़े परिश्रम से इन्दौर में अपना विद्याध्ययन समाप्त किया और इस के पश्चात् श्री हरिभाऊ जी उपाध्याय के सम्पर्क में आते रहे। कुछ समय तक प्रसिद्ध 'नवजीवन' पत्र के भी आप उप सम्पादक रहे।

आप ने अजमेर में रह कर कितने ही अच्छे-अच्छे ग्रन्थ हिन्दी साहित्य को भेंट किये हैं। उन में से 'शैतान की लकड़ी' नामक ग्रन्थ आपने बड़े परिश्रम से तैयार किया है। इस में सब प्रकार के नशों के विषय में पर्याप्त सामग्री एकत्र की है। इसी पुस्तक का 'तमाखू' नामक अंश प्रस्तुत पुस्तक में उद्धृत किया गया है।

———

श्री गोपाल दामोदर तामस्कर

श्री तामस्कर जी से हिन्दी भाषा-भाषी लोग अच्छी तरह परिचित हैं। आप जन्मतः महाराष्ट्रीय होते हुए भी कर्मतः हिन्दी ही हैं। इतिहास, राजनीति, तथा समाज-शास्त्र का आप का गहरा अध्ययन है। आजकल आप जबलपुर के एक कालेज में हिन्दी के प्रोफ़ेसर हैं। श्री छत्रपति शिवाजी के विषय में समय-समय पर आप जो लेख मासिक पत्रिकाओं में लिखते हैं, उन्हीं का एक संग्रह 'शिवाजी की योग्यता' के नाम से 'सस्ता साहित्य मण्डल' अजमेर ने प्रकाशित किया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह पुस्तक मनन करने योग्य है। विदेशियों के मत में 'शिवाजी का स्थान' नामक अध्याय इसी पुस्तक से लिया गया है।

× × × × ×

७४. बर्नियर—(१६२०-१६८८ ई०) एक फ़्रान्सीसी यात्री जो औरङ्गज़ेब का वैद्य बन गया था। इस ने समस्त भारत में यात्रा की और जो कुछ देखा-भाला उस का वृत्तान्त लिखा। उस की यह पुस्तक १६७० ई० में प्रकाशित हुई।

७५. ट्रेवार्नियर—(१६०५-१६८६ ई०) यह एक फ़्रान्सीसी यात्री था। इस ने ६ बड़ी-बड़ी यात्रायें कीं और उन का वृत्तान्त लिखा। यह सन् १६६५ ई० में औरङ्गज़ेब से मिला, जिसे इस ने कई हीरे दिये। इस ने प्रसिद्ध डाक्टर बर्नियर के साथ बंगाल की यात्रा की।

७६. गस्टेव्हस अडाल्फस—(१५६४-१६३२) यह स्वेडन का बादशाह था और ३० वर्ष के युद्ध का नेता था। डेनमार्क, रूस, पोलेएड आदि के विरुद्ध लड़ा। यह बड़ा वीर था और राष्ट्रीय नेता था।

७७. खाफ़ीखाँ—इन का पूर्व नाम मुहम्मद हाशिम था। इन्हीं ने भारत का इतिहास लिखा है, जिस का नाम है तारीखे खाफ़ी खाँ या मुन्तखिबुललुबाब। औरंगज़ेब के राज्य-काल में उस ने इस इतिहास को न छपाया। यह मुहम्मदशाह के राज्य काल में प्रकाशित हुआ। इस का पर्याप्त आदर हुआ और खाफ़ी खाँ को पद दिया गया।

महावीरप्रसाद जी द्विवेदी

'दण्डदेव का आत्म-निवेदन' शीर्षक लेख द्विवेदी जी की कल्पना के उड़ान और उन के सुविस्तृत अध्ययन का परिचायक है। मनोरञ्जक होते हुए भी लेख कितना गम्भीर है॥

महा० मोहनदास कर्मचन्द गान्धी

'ब्रह्मचर्य' शीर्षक अंश महा० गान्धी का प्रवचन है। अपने नैतिक आचरण, सत्य और अहिंसा में अगाध विश्वास तथा अलौकिक प्रतिभा के कारण गान्धी जी संसार में अद्वितीय पुरुष माने जाते हैं। उन्हीं ने भादरण में एक मानपत्र का उत्तर देते हुए ब्रह्मचर्य पर उपदेश दिया था। उस उपदेश का उल्था श्री बा० मृत्युञ्जयप्रसाद जी ने भाषा में किया है। सस्ता साहित्य मण्डल अजमेर से प्रकाशित 'अनीति की राह पर' नामक पुस्तक में से यह प्रवचन उद्धृत किया गया है।

६३. नवजीवन - म० गान्धी का साप्ताहिक पत्र जो अहमदाबाद से गुजराती भाषा में निकलता है।

६४. द्रष्टा—साक्षात् करने वाला। (सांख्य के अनुसार पुरुष और योग के अनुसार आत्मा)।

गायत्री—हिन्दु-धर्म के सब से पवित्र मन्त्र का नाम। द्विजों में यज्ञोपवीत के समय आचार्य्य इस मन्त्र का उपदेश ब्रह्मचारी को करता है। इसे सावित्री मन्त्र भी कहते हैं।

६५. छाजन—एक रोग, जो पैर को गला देता है। उस में से पानी निकलता रहता है।

६६. नैष्ठिक ब्रह्मचारी—वह ब्रह्मचारी जो उपनयन काल से ले कर मरण-काल तक गुरु के आश्रम ही पर रहे।

डा० त्रिलोकीनाथ वर्म्मा

'हमारे शरीर की रचना' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ के रचयिता डाक्टर त्रिलोकीनाथ जी 'क्षय-रोग' शीर्षक लेख के लेखक हैं। यह लेख 'विज्ञान' नामक मासिक पत्र में प्रकाशित हो चुका है। वहीं से इसे उद्धृत किया है। इस के लिए लेखक और प्रकाशक धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री पदुमलाल-पुन्नालाल बख़्शी

'नाटक' बख़्शी जी की विख्यात पुस्तक 'विश्व-साहित्य' के 'नाटक' शीर्षक एक विषय का उद्धरण है। बख़्शी जी ने विश्व-साहित्य का ख़ूब अध्ययन किया है और इस विषय पर

उन के लेख सरस्वती में प्रकाशित होते रहे हैं। विश्व-साहित्य उन्हीं लेखों का संग्रह है। बख्शी जी हिन्दी के उच्च-कोटि के लेखकों में से हैं। आप कई वर्षों तक 'सरस्वती' के सम्पादक रहे और आप के समय में 'सरस्वती' की बहुत उन्नति हुई। आपने कितनी ही पुस्तकें लिखी हैं। आप अभी युवक ही हैं। आप से हिन्दी संसार को बहुत आशायें हैं।

श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

श्री दीनानाथ जी गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक हैं। आप ने अपना जीवन समाज-सुधार के कार्य्य में ही लगा रक्खा है। आप के लेख भी इसी विषय पर रहते हैं। प्रस्तुत लेख प्रसिद्ध समाज-सुधारक दानवीर श्री सर गङ्गाराम जी के जीवन पर लिखा गया है। यह लेख 'त्याग-भूमि' में प्रकाशित हो चुका है।

× × × × ×

१२१. विक्रमादित्य—उज्जयिनी के एक प्रतापी प्रसिद्ध राजा का नाम। यह बड़े विद्याप्रेमी, उदार और दानी कहे जाते हैं। इन के दानादि के विषय में कितने ही प्रवाद प्रचलित हैं।

१२८. नवद्वीप—बंगाल का एक प्रसिद्ध नगर और विद्यापीठ। यह गंगा नदी के बीच में एक चट पर बसा हुआ था। कहते हैं कि यहाँ छोटे-छोटे नौ गाँव हैं, जिन के समूह को पहिले 'नवद्वीप' कहते थे। 'नदिया' शब्द इसी का अपभ्रंश है। यह स्थान न्याय के लिए प्रसिद्ध है।

श्री पंडित रामचन्द्र शुक्ल

पंडित रामचन्द्र जी शुक्ल का जन्म सं० १६४१ वि० में गोरखपुर ज़िले के अगोना ग्राम में हुआ। आप का उर्दू, अङ्गरेज़ी और संस्कृत का अध्ययन कई स्थान पर हुआ। आप को बचपन से ही हिन्दी भाषा से प्रेम था। १६ वर्ष की अवस्था में आप की 'मनोहर छटा' शीर्षक कविता 'सरस्वती' में प्रकाशित हुई। अङ्गरेज़ी के पत्रों में भी आप के लेख प्रकाशित होते रहे। कुछ दिन हाई स्कूल, मिर्ज़ापुर में अध्यापक रह कर आपने काशी नागरी प्रचारिणी सभा के हिन्दी कोष का सम्पादन सहायक सम्पादक के रूप में किया। आज कल आप हिन्दू-विश्व-विद्यालय काशी में हिन्दी के अध्यापक हैं।

शुक्ल जी के लेखों में अपने ही विचार रहते हैं। इन की लेखनी काफ़ी गूढ़ विषयों पर चलती है। आप ने साहित्य के विषयों पर कितने ही सुन्दर परन्तु गम्भीर लेख लिखे हैं। आप ने मनोविकारों (Emotions) पर भी कितने ही अच्छे लेख लिखे हैं। हमारे विचार में हिन्दी साहित्य में यह अभी तक अपना जोड़ नहीं रखते। उन्हीं निबन्धों में से प्रस्तुत पुस्तक में 'क्रोध' पर एक निबन्ध उद्धृत है। यह निबन्ध श्री बाबू श्याम-सुन्दरदास जी द्वारा सम्पादित 'हिन्दी निबन्ध माला' में प्रकाशित हो चुका है।

१४०. चाणक्य—चाणक ऋषि के वंश में उत्पन्न एक मुनि जिन के रचे हुए अनेक नीति-ग्रन्थ मिलते हैं। यह पाटलि-पुत्र के सम्राट् चन्द्रगुप्त के मंत्री थे और कौटिल्य नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

१४२. अघोरी—अघोर मत का अनुयायी जो मद्य-माँस के सिवाय मल, मूत्र, शव आदि घिनौनी वस्तुओं को भी खा जाता है।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र इस समय की हिन्दी के जन्मदाता कहे जाते हैं, इन का जन्म सं० १६०७ वि० (सन् १८५० ई०) में हुआ था। यह बहुत ही उद्योगशील थे। काव्य-रचना के अतिरिक्त इन्हों ने 'चौखंभा स्कूल' जो अब 'हरिश्चन्द्र हाई स्कूल' के नाम से विख्यात है, 'कवितावर्द्धिनी सभा' 'पेनीरीडिङ्ग क्लब' तथा 'तदीय समाज' की स्थापना की। इन्हों ने 'कवि-वचन-सुधा' नामक मासिक पत्र भी निकाला। और भी इन्हीं ने दो पत्रिकाएँ निकालीं। सन् १८८० ई० में समाचारपत्रों ने इन्हें 'भारतेन्दु' की पदवी से अलंकृत किया, सन् १८८५ में इन का स्वर्गवास हुआ।

भारतेन्दु ने कितने ही नाटक लिखे हैं। वास्तव में इन्हीं की कविताएँ हिन्दी में नाट्य-साहित्य का प्रारम्भ करती हैं।

'सत्य हरिश्चन्द्र' भारतेन्दु जी का सब से प्रसिद्ध मौलिक नाटक है। कहते हैं कि यह नाटक क्षेमी ईश्वर के 'चंड कौशिक' नाटक का छायानुवाद है। वास्तव में इस के नायक श्री हरिश्चन्द्र जैसा सत्य-प्रतिज्ञ पात्र संसार के साहित्य में मिलना कठिन है। इस पुस्तक में 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक के ही एक दृश्य का उद्धरण है। विश्वामित्र जी ने हरिश्चन्द्र से दक्षिणा माँगी, जिस में उस ने सारा राजपाट ले लिया। राजा, स्त्री और पुत्र तीनों ने काशी में आकर नौकरी कर ली। हरिश्चन्द्र एक चाण्डाल के

वहाँ नौकर हो गया। वह श्मशान पर रहता और दाह के लिए अग्नि दे कर कर वसूल करता। यह दृश्य उस समय का है जब हरिश्चन्द्र और शैव्या अपने पुत्र रोहित के साथ राज्य-दान कर काशी में जाकर बिक गये। वहाँ पर रहते हुए रोहिताश्व को साँप ने काट लिया। उस की माता पुत्र के शव को लेकर श्मशान पर पहुँची, जहाँ चाण्डाल के सेवक हरिश्चन्द्र की नियुक्ति थी।

श्री महावीरप्रसाद जी द्विवेदी

[द्विवेदी जी के विषय में विस्तृत विवेचन पृष्ठ १९१ में किया गया है]·

"भाषा शिक्षा और स्मरण शक्ति" शीर्षक अंश प्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता हर्बर्ट स्पेन्सर की "एजुकेशन" नामक पुस्तक का है जिस का द्विवेदी जी ने अनुवाद करके 'शिक्षा' नाम रखा है।

काका कालेलकर

काका साहेब यों तो महाराष्ट्रीय हैं, परन्तु वह आकर बसे हैं गुजरात में। आप का पूरा नाम है दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर। पूना के फ़र्ग्यूसन कालेज में अपनी शिक्षा प्राप्त की। इस के बाद महात्मा गांधी जी के सम्पर्क में आते रहने से वह गुजरात में आ बसे। अब तो वह गुजराती ही हैं। गुजरात विचारकों में आप की गिनती की जाती है।

…विद्यापीठ के आचार्य और महात्मा जी

के 'नवजीवन' के साथ निकलने वाले 'शिक्षण और साहित्य' नामक मासिक पत्र के सम्पादक हैं। श्री निवासाचार्य्य द्विवेदी जी द्वारा अनुवादित काका साहेब के लेख संग्रह 'जीवन साहित्य' से यह 'विजयादशमी' लेख लिया गया है।

सन्त तुकाराम

लगभग तीन सौ-वर्ष हुए महाराष्ट्र में उतनी ही उच्चकोटि के भक्त-कवि सन्त तुकाराम हुए हैं, जितने युक्त प्रान्त में श्री तुलसीदास जी। जनता इन की कविता पर उतनी ही मुग्ध है, जितनी तुलसीदास के काव्य पर।

इस लेख के लेखक हैं हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ, शान्ति निकेतन के हिन्दी अध्यापक श्री जगन्नाथप्रसाद जी 'मिलिन्द'। यह लेख 'विशाल भारत' में प्रकाशित हो चुका है। उस का अंश यहाँ उद्धरण किया गया है।

× × × × ×

१६४. चैतन्य—एक प्रसिद्ध बंगाली वैष्णव-धर्म-प्रचारक, जिनका पूरा नाम श्री कृष्णचैतन्य चन्द्र था। इन का जन्म नवद्वीप में हुआ था। अब बंगाल में इन के चलाये सम्प्रदाय में बहुत लोग हैं। चैतन्य महा प्रभु और निताई आदि इनके कई नाम हैं।

नरसी महता—(१४-१३-७६) गुजराती भाषा के प्रथम कवि हुए हैं। इन्हों ने कोई बड़ी पुस्तक नहीं लिखी है। हाँ, धार्मिक भजन अवश्य लिखे हैं। यही इनकी कीर्ति की भित्ति

है। यह भजन कहीं-कहीं बहुत सुन्दर हैं। इन के शिष्य थे प्रेमानन्द भट्ट, जिन्हों ने 'नरसी मेहता नू मामेरु' लिखा है, और रेवाशङ्कर तथा सामल भट्ट।

गिरिधर नागर—यह १८ वीं शताब्दी में ब्रजभाषा के कवि हुए हैं। इन की कुण्डलियाँ मशहूर हैं।

१६५-विट्ठल—दक्षिण भारत की विष्णु की एक मूर्ति का नाम।

१६६-निवृत्तिवादी—सांसारिक बातों से दूर रह कर मोक्ष प्राप्ति बतलाने वाले। बौद्ध-धर्म के अनुसार मोक्ष मानने वाले।

१६७-श्री समर्थरामदास स्वामी—दक्षिण-भारत के एक प्रसिद्ध महात्मा, जो छत्रपति महाराज शिवाजी के गुरु थे। उन की पुस्तक 'दास बोध' प्रख्यात है।

१६८-अभंग—जिस का क्रम न टूटे। समर्थरामदास स्वामी के भजन कदाचित् लम्बे और अनियन्त्रित शब्द प्रवाह के कारण, अभंग कहे गये।

केशव—इन का जन्म बुन्देलखण्ड में हुआ था। 'कवि-प्रिया' और 'रसिक प्रिया' नामक इन के दो ग्रन्थ बहुत विख्यात हैं।

मोरोपन्त—विद्वान् महाराष्ट्र कवि।

१७०-प्रसादगुण—काव्य का एक गुण जिसकी भाषा स्वच्छ और साधु हो, जटिल और ग्रामीण शब्द न हों और सुनने के साथ ही जिस का भाव श्रोता समझ सकें।

१७३-टेकड़ियाँ—छोटी पहाड़ियाँ।

श्रीकृष्णदेवप्रसाद जी गौड़, एम. ए.

गौड़ जी हिन्दी के एक होनहार लेखक हैं। शिक्षा, विज्ञान और साहित्य की ओर उन की सदैव से विशेष अभिरुचि रही है। समय-समय पर हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखते रहते हैं। 'बेढब' बनारसी के नाम से 'अकबर' के ढँग पर हास्य और व्यङ्गपूर्ण कविताएँ भी लिखी हैं, जिन्हें लोगों ने बहुत पसन्द किया है। आप इस वर्ष हिन्दी साहित्य सम्मेलन के साहित्य-मंत्री चुने गये हैं। काशी से प्रकाशित 'विज्ञान' नामक मासिक पत्र से "केंचुए का महत्व" नामक यह लेख लिया गया है। इस रूखे विषय को भी आप ने मनोरञ्जक बना दिया है।

पं० बालकृष्ण भट्ट

पं० बालकृष्ण भट्ट का जन्म सं० १९०१ में हुआ था। इन की माता बड़ी विदुषी थीं। माता के प्रोत्साहन से इन में विद्यानुराग बढ़ा और इन्हों ने १५-१६ वर्ष की आयु तक संस्कृत पढ़ कर अँग्रेजी शिक्षा आरम्भ करदी। यह मेट्रीक्युलेशन पास करने के बाद यमुना मिशन स्कूल में अध्यापक हो गये। परन्तु धर्म के पक्षपाती होने के कारण इन्हें स्कूल छोड़ देना पड़ा। इस समय से यह पत्रादिकों में लेख भेजने लगे। प्रयाग के 'हिन्दी प्रदीप' के आप सम्पादक हुए। इन्हों ने कितने ही ग्रन्थों की रचना की है। कलिराज की सभा, नूतन ब्रह्मचारी, जैसा काम वैसा परिणाम, बाल-विवाह नाटक, रेल का विकट खेल, भाग्य की परख, सौ अजान एक सुजान इत्यादि। सौ अजान

एक सुजान, नामक पुस्तक से ही इस पुस्तक में प
उद्धरण किया गया है।

आप की शैली कुछ क्लिष्ट रहती है। संस्कृत शब्दों
काफी भरमार करते हैं। अलङ्कार से भाषा को काफी
हैं। किन्तु आप की भाषा में चटक रहती है। फ़ारसी वे
भी बहुधा प्रयोग करते हैं और इन से भाषा में जान-र
जाती है।

कणाद—वैशेषिक शास्त्र के रचयिता।

तिग्मांशु—(तिग्म-तेज; अंशु-किरण) सूर्य।

शीतस्पर्शवत्यापः—कणाद मुनि ने पाँचों तत्वों में से
तत्व की परिभाषा में लिखा है कि जल वह तत्व है कि जो
में शीतल हो।

उच्चाटन—तंत्र के छै अभिचारी या प्रयोगों में से
नाश।

अँगरैतिन-परिश्रम करने वाली।